परिशिष्ट-६

देवद्रव्यादि सात क्षेत्रों की

व्यवस्था का अधिकारी कौन ?

अहिगारी य गिहत्थो सुह-समणो वित्तम जुओ कुलजो ।
अखुद्धो धिई बलिओ, मइमं तह धम्मरागी य ।।५।।

गुरु-पूआ-करण रई सुस्सूआइ गुण संगओ चेव ।
णायाऽहिगय-विहाणस्स धणियमाणा-पहाणो य ।।६।। पञ्चाशक ७ ।

द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ में पूज्य महोपाध्याय **श्री लावण्य विजयजी गणिवर्य** उक्त **पंचाशक प्रकरण ग्रन्थ** के अनुसार बताते हैं कि धर्म के कार्य करने में अनुकुल कुटुम्बवाला, 'न्यायनीति से प्राप्त धनवाला', लोको से सन्माननीय, उत्तम कुल में जन्म लेने वाला, 'उदारदिल वाला', धैर्य से कार्य करनेवाला, बुद्धिमान, धर्म का रागी । गुरुओं की भक्ति करने की रति वाला, शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुणों को धारण करनेवाला और शास्त्राज्ञा पालक देवद्रव्यादि सात क्षेत्रों की व्यवस्था करने का अधिकारी होता है ।

विशिष्ट अधिकारी कौन ?

मग्गाऽनुसारी पायं सम्मदिट्ठी तहेव अणुविरइ ।
एएऽहिगारिणो इह, विसेसओ धम्म - सत्थम्मि ।।७।।

मार्गानुसारी, अविरति सम्यग्दृष्टि, देशविरतिवाला, धर्म शास्त्रों के अनुसार व्यवस्था करनेवाला ही प्रायः करके विशेष अधिकारी होता है । **(धर्मसंग्रह से उद्धृत्)** ।

जिन पवयण-वृद्धिकरं पभावगं नाणदंसणगुणाणं वड्ढन्तो ।
जिणदव्वं तित्थयरत्तं लहइ जीवो, रक्खंतो जिणदव्वं परित्त संसारिओ होई ।
(श्राद्धदिन-कृत्य गा. १४३-१४४)

जैन शासन की वृद्धि करनेवाला और ज्ञान-दर्शनादि गुणों की प्रभावना करनेवाला देवद्रव्य की वृद्धि शास्त्र के अनुसार करता है, वह जीव तीर्थंकर पद को भी प्राप्त करता है और देवद्रव्यादि की रक्षा करनेवाला संसार को कम करता है ।

धर्मद्रव्य के भक्षण, उपेक्षा और विनाश के दारुण परिणाम - शास्त्र के आधार से ।

जिन-पवयण वृद्धिकरं पभावगं नाणदंसण-गुणाणं ।
भक्खंतो जिणदव्वं अनंत संसारिओ होइ (श्रा.दि.गा. १४२)

जैन शासन की वृद्धि करनेवाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों की प्रभावना करनेवाला यदि देवद्रव्य का भक्षण करता है तो वह अनंत संसारी यानी अनंत संसार को बढ़ाता है और देवद्रव्य के ब्याज आदि द्वारा स्वयं लाभ उठाता है, वह दुर्भाग्य और दारिद्रावस्था को प्राप्त करता है और देवद्रव्य का नाश होते हुए भी उपेक्षा करता है, वह जीव दुर्लभबोधि को प्राप्त करता है ।

जिणवरआणारहियं वद्धारंता वि के वि जिणदव्वं ।
बुड्डंति भवसमुद्दे मूढा मोहेण अन्नाणी ।। (संबोधप्रकरण गाथा-१०२)

जिनेश्वर भगवान की आज्ञा के विरूद्ध देवद्रव्य को बढ़ाता है, वह मोह से मूढ अज्ञानी संसार समुद्र में डूब जाता है । द्रव्यसप्ततिका टीका में कहा है कि, **'कर्मादानादि - कुव्यापारं वर्ज्य, सद् - व्यापारादिविधिनैव तद् वृद्धिः कार्या ।'** १५ कर्मादानादि के व्यापार को छोड़कर सद् व्यवहारादि की विधि से ही देवद्रव्य की वृद्धि करना चाहिए ।

भक्खेइ जो उविक्खेइ जिणदव्वं तु सावओ ।
पण्णाहीनो भवे जीवो लिप्पइ पावकम्मुणा ।।

जो श्रावक देवद्रव्य का भक्षण करता है और देवद्रव्यादि का भक्षण करनेवाले की उपेक्षा करता है, वह जीव मंदबुद्धिवाला होता है और पाप कर्म से लेपा जाता है ।

आयाणं जो भंजइ पडिवन्न - धणं न देइ देवस्स ।
गरहंतं चो - विक्खइ सो वि हु परिभमइ संसारे ।।

जो देवद्रव्यादि के मकानादि का भाड़ा, पर्युषणादि में बोले गए चढ़ावे, संघ का लागा और चंदे आदि में लिखवाई गई रकम देता नहीं है या बिना ब्याज से देरी से देता है और जो देवद्रव्य की आय को तोड़ता है, देवद्रव्य का कोई विनाश करता हो तथा उगाही आदि की उपेक्षा करता हो वह भी संसार में परिभ्रमण करता है । **श्राद्धविधि १२९**

चेइदव्व विणासे तद्, दव्व, विणासणे दुविहभेए ।
साहु उविक्खमाणो अणंत-संसारिओ होई ।।

चैत्यद्रव्य यानी सोना चांदी रुपये आदि भक्षण से विनाश करे और दूसरा तद् द्रव्य यानी २ प्रकार का जिनमंदिर का द्रव्य नया खरीद किया हुआ और दूसरा पुराना मंदिर के ईंट, पत्थर, लकडादि का विनाश करता हो और विनाश करनेवाले की यदि साधु भी उपेक्षा करता हो तो वह भी अनंतसंसारी होता है ।

चेइअ दव्वं साधारणं च भक्खे विमूढमणसा वि ।
परिभमइ, तिरीय जोणीसु अन्नाणित्तं सया लहई ।। (संबोध प्रकरण गा. १०३)

संबोध प्रकरण में कहा है कि देवद्रव्य और साधारण द्रव्य मोह से ग्रसित मनवाला भक्षण करता है, वह तिर्यंच योनि में परिभ्रमण करता है और हमेशा अज्ञानी होता है ।

& **पुराण** में भी कहा है कि

देवद्रव्येन या वृद्धि र्गुरु द्रव्येन यद् धनं ।
तद् धनं कुलनाशाय मृतो पि नरकं व्रजेत् ।।

देवद्रव्य से जो धनादि की वृद्धि और गुरुद्रव्य से जो धन प्राप्त होता है वह कुल का नाश करता है और मरने के बाद नरक गति में ले जाता है ।

चेइअदव्वं साधारणं च जो दुहइ मोहिय-मईओ ।
धम्मं च सो न याणइ अहवा बद्धाउओ नरए ।। (संबोध प्रकरण गा. १०७)

जो मनुष्य मोह से ग्रस्त बुद्धिवाला देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्य को स्वयं के उपयोग में लेता है, वह धर्म को नहीं जानता है और उसने नरक का आयुष्य बांध लिया है, ऐसा समझना चाहिए ।

चेइअ-दव्व-विणासे रिसिघाए पवयणस्स उड्डाहे ।
संजइ-चउत्थभंगे मूलग्गी बोहि-लाभस्स ।। (संबोध प्रकरण गा. १०५)

देवद्रव्य का नाश, मुनि की हत्या, जैन शासन की अवहेलना करना-करवाना और साध्वी के चतुर्थव्रत को भंग करना बोधिलाभ (समकित) रूपी वृक्ष के मूल को जलाने के लिए अग्नि समान है ।

स च देवद्रव्यादि-भक्षको महापापो प्रहत-चेताः ।
मृतो पि नरकं अनुबंध-दुर्गतिं व्रजेत् ।।

महापाप से नाश हो गया है मन जिसका, ऐसा व्यक्ति देवद्रव्यादि का भक्षण करके मरने पर दुर्गति का अनुबंध कर नरक में जाता है ।

प्रभास्वे मा मतिं कुर्यात् प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति प्रभादग्धो न रोहयेत् ।। (श्राद्धदिन-कृत्य १३४)

प्राण कंठ में आने पर भी देवद्रव्य लेने की बुद्धि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अग्नि से जले हुए वृक्ष उग जाते हैं, लेकिन देवद्रव्य के भक्षण के पाप से जला हुआ वापिस नहीं उगता ।

अग्निदग्धाः पादप - जलसेकादिना प्ररोहन्ति पल्लवयन्ति परं देवद्रव्यादि - विनाशोग्र - पाप - पावक - दग्धो नरः समूल - दग्ध - द्रुमवत् न पल्लवयति प्रायः सदैव दुखभाक्त्वं पुनर्नवो न भवति ।

अग्नि से जले हुए वृक्ष जल के सिंचन से उग जाते हैं और पल्लवित हो जाते हैं, लेकिन देवद्रव्यादि के विनाश के उग्र पाप रूपि अग्नि से जला हुआ, मूल से जले हुए वृक्ष की तरह वापस नहीं उगता है । प्रायः करके हमेशा दुःखी होता है ।

प्रभा-स्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद् धनं ।
गुरु-पत्नी देवद्रव्यं च स्वर्गस्थमपि पातयेत् ।। (श्राद्धदिन-कृत्य-१३५)

प्रभाद्रव्य हरण, ब्रह्महत्या और दरिद्र का धनभक्षण-गुरु पत्नी भोग और देवद्रव्य का भक्षण स्वर्ग में रहे हुए को भी गिरा देता है ।

& **दिगम्बरों के ग्रन्थ** में भी कहा है कि :-

वरं दावानले पातःक्षुधया वा मूतिर्वरम् ।
मूर्ध्नि वा पतितं वज्रं न तु देवस्वभक्षणम् ।।१।।

वरं हालाहलादीनां भक्षणं क्षणं दुःखदम् ।
निर्माल्यभक्षणं चैव दुःखदं जन्म जन्मनि ।।२।।

दावानल में गिरना श्रेष्ठ, भूख से मौत श्रेष्ठ या सिर पर वज्र (शस्त्र) गिर पड़े तो भी अच्छा लेकिन देवद्रव्य का भक्षण नहीं करना चाहिए । विष का भक्षण श्रेष्ठ है, क्योंकि थोड़े काल का दुखदायी होता है । लेकिन निर्माल्य का भक्षण तो जन्म-जन्म में दुःख देनेवाला होता है ।

ज्ञात्वेति जिन-निर्ग्रन्थ-शास्त्रादीनां धनं नहि ।
गृहीतव्यं महापाप-कारणं दुर्गति-प्रदम् ।।३।।

इस प्रकार जान करके देवद्रव्य, गुरुद्रव्य और ज्ञानादि का द्रव्य ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह महा-पाप का कारण और दुर्गति देनेवाला है ।

भक्खणं देव-दव्वस्स परत्थी-गमणेण च ।
सत्तमं णरयं जंति सत्त वाराओ गोयमा ।।

हे गौतम ! जो देवद्रव्य का भक्षण करता है और परस्त्री का गमन करता है, वह सात बार सातवीं नरक में जाता है ।

श्री शत्रुंजय-माहात्म्य में कहा है कि -

देवद्रव्यं गुरुद्रव्य दहेदासप्तमं कुलम् ।
अङ्गालमिव तत् स्प्रष्टुं युज्यते नहि धीमताम् ।।

देवद्रव्य और गुरुद्रव्य का भक्षण सात कुल का नाश करता है । इसलिए बुद्धिमान् को उसको अंगारे की तरह जान करके छूना भी नहीं चाहिए - अर्थात् तुरन्त दे देना चाहिए।

देवाइ-दव्वणासे दंसणं मोहं च बंधए मूढा ।
उम्मग्ग-देसणा वा जिन - मुनि - संघाइ - सत्तुव्व ।।

देवद्रव्य का नाश करनेवाला, उन्मार्ग की देशना देनेवाला मूढ़ जिन, मुनि और संघादि का शत्रु है और दर्शन - मोहनीय कर्म का बंध करता है ।

जं पुणो जिण-दव्वं तु वृद्धिं निंति सु-सावया ।
ताणं रिद्धी पवड्ढेइ कित्ति सुख-बलं तहा ।।

पुत्ता हुंति सभत्ता सोंडिरा बुद्धि-संजुआ ।
सकललक्खण संपुन्ना सुसीला जाण संजुआ ।।

देवद्रव्यादि धर्म द्रव्याणि की व्यवस्था करनेवाला, प्रभु की आज्ञानुसार नीतिपूर्वक देवद्रव्यादि को बढ़ाता है, उनकी ऋद्धि कीर्ति, सुख और बल बढ़ता है और उनके पुत्र भक्त, बुद्धिमान्, बलवान् सभी लक्षणों से युक्त और सुशील होते हैं ।

एवं नाउण जे दव्वं वुड्ढिं निंति सुसावया ।
जरा-मरण-रोगाणं अंतं काहिंति ते पुणो ।।

इस प्रकार जान करके जो देवद्रव्य को नीतिपूर्वक बढ़ाने वाले होते हैं, वे जन्म, मरण, बुढापा और रोगों का अंत करते हैं ।

तित्थयर-पवयण-सुअं आयरिअं गणहरं महिड्ढिअं ।
आसायंतो बहुसो अणंत-संसारिओ होइ ।।

जो तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुतज्ञान, आचार्य, गणधर, महर्द्धिक की आशातना करता है, वह अनंत संसारी होता है ।

दारिद्द-कुलुप्पत्ती दारिद्दभावं च कुट्ठरोगाइ ।
बहुजणधिक्कारं तह, अवण्णवायं च दोहग्गं ।।

तण्हा छुहामि भूई घायण-बाहण-विचुण्णतीय ।
एआइ - असुह फलाइं बीसीअइ भुंजमाणो सो ।।

देवद्रव्यादि के भक्षणादि से द्ररिद्र कुल में उत्पत्ति, दरिद्रता, कोढ़ के रोगादि, बहुत लोगों का धिक्कार पात्र, अवर्णवाद, दुर्भाग्य, तृष्णा, भूख, घात, भार खेंचना, प्रहारादि अशुभ फलों को भोगता हुआ प्राणी अनंत दुःखी होता है ।

जइ इच्छह निव्वाणं अहवा लोए सुवित्थडं कित्तिं ।
ता जिणवरणिद्दिट्ठं विहिमग्गे आयरं कुणह ।।

हे भव्य प्राणियों ! यदि तुम्हें निर्वाण पद की इच्छा हो अथवा लोक में हमेशा कीर्ति का विस्तार करना हो तो जिनेश्वर देव के बताए हुए विधिमार्ग का आदर करो ।

वीतराग ! सपयास्तवाज्ञापालनं परम् ।
आज्ञाराद्धा विराद्धा च शिवाय च भवाय च ।। (वीतराग-स्तोत्र)

हे वीतराग ! आपकी पूजा के वनिस्पत आपकी आज्ञा का पालन करना श्रेष्ठ है । क्योंकि आपकी आज्ञा का अनुसरण मोक्ष प्राप्त कराता है और आज्ञा का उलंघन संसार में भ्रमण कराता है ।

उपदेश-सप्ततिका के पांचवें अधिकार में कहा है कि -

ज्ञानद्रव्यं यतोऽकल्प्यं देव-द्रव्यवदुच्यते ।
साधारणमपि द्रव्यं कल्पते सङ्घ-सम्मतम् ।

एकैत्रेव स्थानके देववित्तं क्षेत्र - द्वय्यामेव तु ज्ञानरिक्थम् ।।
सप्त क्षेत्र्यां स्थापनीयं तृतीयं श्रीसिद्धान्ते जैन एवं ब्रवीति ।

देवद्रव्य की तरह ज्ञानद्रव्य भी अकल्पनीय कहलाता है । साधारण द्रव्य भी संघ की सम्मति से सात क्षेत्रों में काम आता है, देवद्रव्य एक ही स्थान (क्षेत्र) में काम आता

है और ज्ञानद्रव्य ऊपर के दो क्षेत्रों में काम आता है । साधारण द्रव्य सातों क्षेत्रों में काम आ सकता है, ऐसा सिद्धान्तों में कहा है ।

पायेणंतदेऊल जिणपडिमा कारिआओ जियेण ।
असमंजसवित्तीए न य सिद्धो दंसणलवोवि ।।

इस जीव ने प्रायः करके अनंत मंदिर और जिन प्रतिमा बनवाई होगी, परंतु शास्त्रविधि के विपरीत होने से सम्यक्त्व का अंश भी प्राप्त नहीं हुआ ।

'न पूइओ होइ तेहिं जिन - नाहो ।'
'पूजाए मणसंति मण - संतिएण सुहवरे णाणं ।'

आज्ञारहित द्रव्यादि सामग्री से जिनेश्वर की पूजा की हो तो भी वास्तविक जिन पूजा नहीं की । पूजा का फल मन की शांति है और मन की शांति से उत्तरोत्तर शुभध्यान होता है ।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।

भावभक्ति से जिनेश्वर भगवान को पूजने पर आनेवाले उपसर्गो का नाश होता है, अंतराय कर्म भी टूट जाते हैं और मन की प्रसन्नता भी प्राप्त होती है ।

अतिचार :

तथा देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, साधारण द्रव्य भक्षित उपेक्षित प्रज्ञापराधे विणास्यो विणसंतो उवेख्यो छती शक्ति से सार संभाल न कीधी ।

भक्षण करनेवालों को अतिचार : देवद्रव्य-गुरुद्रव्य-साधारण द्रव्य भक्षण किया, भक्षण करनेवाले की उपेक्षा की, जानकारी न होने से देवद्रव्य का विनाश करे और विनाश करनेवाले की उपेक्षा करे और शक्ति होने पर भी सार संभाल नहीं की ।

द्रव्य सप्ततिका स्वोपज्ञ टीका :-

जिणदव्वऋणं जो धरेइ तस्य गेहम्मि जो जिमइ सड्ढो ।
पावेण परिलिंपइ गेण्हंतो वि हु जइ भिक्खं ।।

जो जिन-द्रव्य का कर्जदार होता है, उसके घर श्रावक जीमता है वह पाप से लेपा जाता है, साधु भी आहार ग्रहण करता है तो वह भी पाप से लेपा जाता है ।

प्रश्न - देवद्रव्य-भक्षक-गृहे जेमनाय गन्तुं कल्पते ? नवा इति-गमने वा तद् जेमन-निष्क्रय-द्रव्यस्य देवगृहे मोक्तुमुचितम् नवा इति ? मुख्यवृत्त्या तद् गृहे भोक्तुं नैव कल्पते ।

देवद्रव्य का भक्षण करनेवाले के घर जीमने जाना कल्पता है या नहीं ? और जीमने जावे तो वह जीमन का निष्क्रय द्रव्य देवमंदिर में देना उचित है या नहीं ? मुख्यतया उस घर जीमने जाना कल्पता नहीं है ।

चेइअ दव्वं गिणिहंतु भुंजए जइ देइ साहुण ।
सो आणा अणवत्थं पावई लिंतो विदितोवि ।।

व्यवहार-भाष्य में कहा है कि जो देवद्रव्य ग्रहण करके भक्षण करता है और साधु को देता है वह आज्ञाभंग, अनवस्था दोष से दूषित होकर और लेनेवाले और देनेवाले दोनों पाप से लिप्त होते हैं ।

अत्र इदम् हार्दम्-धर्मशास्त्रानुसारेण लोकव्यवहारानुसारेणापि यावद् देवादि ऋणम् सपरिवार-श्राद्धादेर्मूर्ध्नि अवतिष्ठते तावद् श्राद्धादि-सत्कः सर्वधनादि - परिग्रहः देवादि-सत्कतया सुविहितैः व्यवह्रियते संसृष्टवात् ।

यहाँ यह रहस्य है कि धर्मशास्त्र एवं लोक व्यवहार से भी जब तक देवादि का ऋण परिवारवाले श्रावकादि के सिर पर रहता है, तब तक श्राद्धादि का सभी धनादि परिग्रह संपत्ति देवद्रव्यादि-मिश्रित है । इससे उसके घर में भोजन करने से उपरोक्त दोष लगते हैं ।

मूल्लं विना जिणाणं उवगरणं, चमर छत्तं कलशाइ ।
जो वापरेइ मूढो, निअकज्जे, सो हवइ दुहिओ ।।

जो जिनेश्वर भगवान के उपकरण, चामर, छत्र, कलशादि का भाड़ा (किराया) दिए बिना अपने कार्य में लेता है, वह मूढ दुःखी होता है ।

देवद्रव्येण यत्सौख्यं, परदारतः यत्सौख्यम् ।
अन्तान्तदुःखाय, तत् जायते ध्रुवम् ।।

भावार्थ - देवद्रव्य से जो सुख और परस्त्री से जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख अनंतानंत दुःख देनेवाला होता है ।

& एक कोथली से व्यवस्था दोषित है ।

देवद्रव्यादि धर्मद्रव्य की व्यवस्था एक कोथली से करना दोषपात्र होने से अत्यन्त अनुचित है ।

अमुक गाँवों में एक कोथली की व्यवस्था है । देवद्रव्य के रुपये आए तो उसी कोथली में डाले, ज्ञानद्रव्य के रुपये आए तो उसी कोथली में तथा साधारण के रुपये आए तो भी उसी कोथली में डालते हैं और जब मन्दिरादि के कोई भी कार्य में खर्च करने होते हैं, तब उसी कोथली में से खर्च करते हैं, उस वक्त आगम ग्रन्थ लिखने का या छपवाने का कार्य अथवा साधु-साध्वीजी म.सा. को पढानेवाले पंडितजी को पगार चुकाने का प्रसंग उपस्थित हो, तब उस कोथली में से रुपये लेकर खर्च करते हैं अथवा साधु आदि के वैयावच्चादि के प्रसंग में भी उसमें से ही खर्च करते हैं ।

वास्तव में देवद्रव्य की, ज्ञानद्रव्य की तथा साधारण द्रव्य वगैरह सब की कोथली अलग-अलग रखनी चाहिए । देवद्रव्य आदि के उपभोग से बचने के लिए बहुत ही जरूरी है । मंदिर का कार्य आवे तो देवद्रव्य की कोथली में से धन व्यय करना चाहिए । ज्ञान का कार्य आवे तो ज्ञानद्रव्य की कोथली में से तथा साधारण के कार्य उपस्थित होवें तो साधारण की कोथली में से धन व्यय करना चाहिए । लेकिन ज्ञान, साधारण खाते की रकम न होवे तो देवद्रव्य की कोथली में से लेकर ज्ञानादि के कार्य में देवद्रव्य का व्यय नहीं कर सकते । यद्यपि मंदिर का कोई कार्य आए तो ज्ञानद्रव्य का उपयोग हो सकता है, क्योंकि ऊपर के खाते के कार्य में नीचे के खाते की सम्पत्ति का व्यय करने में शास्त्र की कोई बाधा नहीं है । अतः देवद्रव्यादि सब द्रव्य की एक कोथली रखने से देवद्रव्य का दुरुपयोग होता है जो पाप का कारणभूत है ।

इस हेतु सब द्रव्य की एक कोथली रखना और सर्व कार्यो में उसमें से द्रव्य खर्चना तद्दन गलत है ।

- परिशिष्ट - ६ देवद्रव्यादि का संचालन कैसे हो ?

पुस्तक में से साभार

परिशिष्ट-७

शास्त्रानुसारी महत्त्वपूर्ण निर्णय

स्वप्नों की घी की बोली का मूल्य बढ़ाकर वह वृद्धि साधारण खाते में नहीं ले जा सकते।

पू. पाद सुविहित आचार्यादि मुनि भगवन्तों का शास्त्रानुसारी सचोट मार्गदर्शन

समस्त भारत वर्ष के श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघों को सदा के लिए मार्गदर्शन प्राप्त हो, इस शुभ उद्देश्य से एक महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ।

इसकी पूर्व भूमिका इस प्रकार है । वि.सं. १९९४ में शान्ताक्रुझ (बम्बई) में पू. पाद सिद्धान्त महोदधि गच्छाधिपति आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजश्री की आज्ञा से पूज्य मुनिवर श्री [?] पर्युषणा पर्व की आराधना के लिए श्रीसंघ की विनति से पधारे थे। उस समय संघ के कई भाइयों की भावना साधारण खाते के खर्च को पूरा करने के लिए स्वप्नों की बोली में घी के भाव बढ़ाकर उसे साधारण खाते में ले जाने की हुई । यह भावना जब संघ में प्रस्ताव के रूप में रखी गई तो उस चातुर्मास में श्री पर्युषण पर्व की आराधना कराने श्रीसंघ की विनति से पधारे हुए पू. मुनि-महाराजाओं ने उसका दृढ़ता से विरोध करते हुए बताया कि 'ऐसा करना उचित नहीं है । यह न तो शास्त्रानुसारी है और न व्यावहारिक ही । स्वप्नों की बोली में इस प्रकार साधारण खाता की आय नहीं मिलाई जा सकती है । इसमें हमारा स्पष्ट विरोध है ।' उन्होंने यह भी कहा कि - 'संघ को इस विषय में निर्णय लेने के पहले जैन संघ के विराजमान एवं विद्यमान पू. सुविहित शासनमान्य आचार्य भगवन्तों से परामर्श करना चाहिए और उसके बाद ही उनकी सम्मति से ही इस विषय में निर्णय लिया जाना चाहिए ।'

अतः तत्कालीन शान्ताक्रुझ संघ के प्रमुख सुश्रावक जमनादास मोरारजी जे.पी. ने इस बात को स्वीकार करके समस्त भारत के जैन श्वे.मू.पू. संघ में, उसमें भी तपागच्छ श्रीसंघ में विद्यमान पू. आचार्य भगवन्तों को इस विषय में पत्र लिखे । वे पत्र तथा उनके जो प्रत्युत्तर प्राप्त हुए, वह सब साहित्य वि.सं. १९९५ के मेरे [पू.आ.श्री कनकचन्द्रसूरि म.] लालबाग जैन उपाश्रय के चातुर्मास में मुझे सुश्रावक नेमिदास अभेचन्द मांगरोल निवासी के माध्यम से प्राप्त हुआ । उसे मैंने [पू.आ.श्री कनकचन्द्रसूरि म.] पहले 'कल्याण' मासिक में प्रकाशनार्थ दिया और आज फिर से अनेक सुश्रावकों की भावना को स्वीकार कर पुस्तक के रूप में उसे प्रकाशित किया जा रहा है ।

(१)

शान्ताक्रुझ संघ की ओर से लिखा गया प्रथम पत्र

'सविनय निवेदन है कि यहाँ का संघ सं. १९९३ के साल तक स्वप्नों के घी की बोली ढाई रुपया प्रति मन से लेता रहा है तथा उसकी आय को देवद्रव्य के रूप में माना जाता था । परन्तु साधारण खाते की पूर्ति के लिये चालू वर्ष में एक प्रस्ताव किया कि स्वप्नों की बोली के घी के भाव रू. ढाई की जगह रु. पाँच किये जावें । जिसमें से पूर्व की भांति ढाई रुपया देवद्रव्य में और ढाई रुपये साधारण खर्च की पूर्ति के लिए साधारण खाते में जमा किये जावें । उक्त प्रस्ताव में शास्त्रीय दृष्टि से या परम्परा से उचित गिना जा सकता है क्या ? इस सम्बन्ध में आपका अभिप्राय बताने की कृपा करें जिससे वह परिवर्तन करने की आवश्यकता हो तो समय पर शीघ्रता से किया जा सके । श्री सूरत, भरुच, बडौदा, खम्भात, अहमदाबाद, महेसाणा, पाटण, चाणस्मा, भावनगर आदि अन्य नगरों में क्या प्रणालिका है ? ये नगर स्वप्नों की बोली के घी आय का किस प्रकार उपयोग करते हैं ? इस विषय में आपका अनुभव बतलाने की कृपा करें ।'

श्रीसंघ के उक्त प्रस्तावानुसार श्री स्वप्नों की बोली के घी की आय श्री देवद्रव्य और साधारण खाते में ले जाई जाय तो श्रीसंघ दोषित होता है या नहीं ? इस विषय में आपका अभिप्राय बतलाने की कृपा करें ।

संघ-प्रमुख

जमनादास मोरारजी

(२)

दुबारा इस विषय में श्रीसंघ द्वारा लिखा गया दूसरा पत्र

'सविनय निवेदन है कि यहाँ श्रीसंघ में स्वप्नों के घी की बोली का भाव ढाई रुपया गत वर्ष तक था । वह आमदनी देवद्रव्य की समझी जाती थी, परन्तु साधारण खर्च की पूर्ति के लिए श्रीसंघ ने विचार करके एक प्रस्ताव किया कि मूल २।।) रु. आवें ये सदा की भांति देवद्रव्य में ले जाये जावें और २।।) रु. जो अधिक आवें वे साधारण खाते की आमदनी में ले जाये जावें । उक्त ठहराव शास्त्र के आधार से ठीक है या नहीं, इस विषय में आपका अभिप्राय बतलाने की कृपा करियेगा । श्री सूरत, भरूच, बडौदा,

खम्भात, अहमदाबाद, महेसाणा, पाटण, चाणस्मा, भावनगर आदि श्रीसंघ स्वप्नों की बोली की आय का किस किस प्रकार उपयोग करते हैं, वह आप के ध्यान में हो तो बताने की कृपा करें ।'

शान्ताक्रुझ श्रीसंघ की तरफ से लिये गये पत्रों के उत्तर रूप में पू. पाद सुविहित शासन मान्य आचार्य भगवन्तों की तरफ से जो जो प्रत्युत्तर श्रीसंघ के प्रमुख सुश्रावक जमनादास मोरारजी जे. पी. को प्राप्त हुए, वे सब पत्र यहां प्रकाशित किये जा रहे हैं । उन पर से स्पष्ट रूप से प्रतीत होगा कि **स्वप्नों की आय में वृद्धि करके प्राप्त की गई रकम भी साधारण खाते में नहीं ले जाई जा सकती है ।'** इस प्रकार सचोट एवं दृढ़ता के साथ पू. पाद शासनमान्य आचार्य भगवन्तों ने फरमाया है । ऐसी स्थिति में जो वर्ग सारी स्वप्नद्रव्य की आय को साधारण खाते में ले जाने की हिमायत कर रहा है, वह वर्ग शास्त्रीय सुविहित मान्य परम्परा के कितना दूर-सुदूर जाकर, श्री वीतरागदेव की आज्ञा के आराधक कल्याणकामी अनेक आत्माओं का अहित करने की पापप्रवृत्ति को अपना रहा है, यह प्रत्येक सुज्ञ आराधक आत्मा स्वयं विचार कर सकता है ।

(१)

पू. पाद आचार्यदेवादि मुनिवरों के अभिप्राय

ता. २३-१०-३८

'अहमदाबाद से लि० पूज्यपाद आराध्यपाद आचार्यदेव श्रीश्रीश्री **विजयसिद्धि सूरीश्वरजी महाराजश्री** की ओर से तत्र शान्ताक्रुझ मध्ये देवगुरु पुण्य प्रभावक सुश्रावक जमनादास मोरारजी वि० श्रीसंघ समस्त योग्य ।'

मालूम हो कि आपका पत्र मिला । पढ़कर समाचार जाने । पूज्य महाराजजी सा. को दो दिन से ब्लड-प्रेशर की शिकायत हुई है । इसलिये ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने की झंझट से दूर रहना चाहते हैं । इसलिए ऐसे प्रश्न यहाँ न भेजें क्योंकि डाक्टर ने मगजमारी करने और बोलने की मनाही कर रखी है । तो भी यदि हमारा अभिप्राय पूछते हो तो संक्षेप में बताते हैं कि **'स्वप्नों की आमदनी के पैसे हम तो देवद्रव्य में ही उपयोग में लिखाते हैं । हमारा अभिप्राय उसे देवद्रव्य मानने का है ।** अधिकांश गांवों या नगरों में उसे देवद्रव्य के रूप में ही काम में लेने की प्रणाली है ।'

साधारण खाते में कमी पड़ती हो तो उसके लिए दूसरी पानड़ी (टीप) करना अच्छा है, परन्तु स्वप्नों के घी की बोली के भाव २।।) के बदले ५) का भाव करके आधे पैसे देवद्रव्य में ले जाना उचित नहीं है । तथा यदि श्रीसंघ ऐसा करता है तो वह दोष का भागीदार है । ऐसा करने की अपेक्षा साधारण खाते अलग पानडी करना क्या बुरा है ? इसलिए **स्वप्नों के निमित्त के पैसों को साधारण खाते में ले जाना हमको ठीक नही लगता है । हमारा अभिप्राय उसे देवद्रव्य में ही काम में लेने का है ।'**

पू. महाराजश्री की आज्ञा से -

द. : मुनि **'कुमुदविजयजी'**

(२)

'साणंद से आचार्य महाराज **श्री विजयमेघसूरीश्वरजी म.** आदि की तरफ से-'

'बम्बई मध्ये देवगुरु भक्तिकारक सुश्रावक जमनादास मोरारजी योग धर्मलाभ । यहाँ सुखशाता है । आपका पत्र मिला । उसके सम्बन्ध में हमारा अभिप्राय यह है कि **स्वप्नों की बोली सम्बन्धी जो कुछ आय हो उसे देवद्रव्य के सिवाय अन्यत्र नहीं ले जाई जा सकती है।** अहमदाबाद, भरुच, सूरत, छाणी, पाटण, चाणस्मा, महेसाणा, साणंद आदि बहुत से स्थानों में प्रायः ऊपर कही हुई प्रवृत्ति चलती है । यही धर्मसाधन में विशेष उद्यम रखें ।' **द. : सुमित्रविजय** का धर्मलाभ

(३)

उदयपुर आ.सु. ६

मालदास की शेरी

'जैनाचार्य विजय **नीतिसूरीश्वरजी** आदि ठाणा १२ शान्ताक्रुझ मध्ये सुश्रावक भक्तिकारक श्रावकगुण सम्पन्न शा. जमनादास मोरारजी जोग धर्मलाभ वांचना । देवगुरु प्रताप से सुखशाता है । उसमें रहते हुए आपका पत्र मिला । बांचकर समाचार जाने । पुनः भी लिखियेगा । **पुरानी प्रणालिका अनुसार हम स्वप्नों की आय को देवद्रव्य में ले जाने के विचारवाले हैं ।** क्योंकि तीर्थंकर की माता स्वप्नों को देखती है, वह पूर्व में तीर्थंकर नाम बांधने से तीर्थंकर माता चवदह स्वप्न देखती है । वे च्यवन कल्याणक के सूचक हैं । अहमदाबाद में सपनों की उपज को देवद्रव्य माना जाता है । यही जो याद करे उसे धर्मलाभ कहियेगा ।' द. : 'पंन्यास **सम्मतविजयजी** गणी के धर्मलाभ'

(४)

ता. २८-९-३८

सिद्धक्षेत्र पालीताणा से लि० आचार्य श्री **विजयमोहनसूरिजी** आदि । तत्र देवगुरु भक्तिकारक सुश्रावक सेठ जमनादास मोरारजी मु. शान्ताक्रुझ योग्य धर्मलाभ के साथ-यहाँ देवगुरु प्रसाद से सुखशाता है । आपका पत्र मिला । समाचार जाने ।

पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व में स्वप्नों की बोली के द्रव्य को किस खाते में गिनना, यह पूछा गया तो इस विषय में यह कहना है कि-गज, वृषभादि जो चौदह महास्वप्न श्री तीर्थंकर भगवन्त की माता को आते हैं, वे त्रिभुवन पूज्य श्री तीर्थंकर महाराज के गर्भ में आने के प्रभाव से ही आते हैं । अर्थात् माता को आनेवाले स्वप्नों में तीर्थंकर भगवान् ही कारण हैं।

उक्त रीति से **स्वप्न आने में जब तीर्थंकर भगवन्त कारण हैं तो उन स्वप्नों की बोली के निमित्त जो द्रव्य उत्पन्न होता है, वह देवद्रव्य में ही गिना जाता है ।** ऐसा हमको उचित लगता है । जिस द्रव्य की उत्पत्ति में देव का निमित्त हो वह देवद्रव्य ही गिना जाना चाहिए, ऐसा हम मानते हैं । इतना ही । धर्मकरणी में विशेष उद्यत रहें । स्मरण करनेवालो को धर्मलाभ कहें।

आसोज सु. ३ सोमवार

द. : **धर्मविजय** का धर्मलाभ

वर्तमान में पू.आ.म. श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी म.

आप के यहाँ आज तक बोली का भाव प्रति मन ढाई रुपया था और वह सब देवद्रव्य गिना जाता था । वह ढाई रुपया देवद्रव्य का कायम रखकर मन का भाव आपने पांच रुपया करना ठहराया । **शेष रुपये ढाई साधारण खाते में ले जाने का आपने नक्की किया, यह हम को शास्त्रीय दृष्टि से उचित नहीं लगता । आज तो आपने स्वप्नों की बोली में यह कल्पना की, कल प्रभु की आरती पूजा आदि की बोली में भी इस प्रकार की कल्पना करेंगे तो क्या परिणाम आवेगा ? अतः जो था वह सर्वोत्तम था ।** स्वप्नों की बोली के ढाई रुपये कायम रखिये और साधारण की आय के लिए स्वप्नों की बोली में कोई भी परिवर्तन किये बिना दूसरा उपाय ढूंढिये; यह अधिक उत्तम है । इतना ही । धर्मकरणी में उद्यत रहें ।

(५)

ईडर आ.सु. १४

पूज्य आचार्य महाराज श्रीमद् विजय **लब्धिसूरिजी महाराज** की आज्ञा से तत्र सुश्रावक देवगुरु भक्तिकारक जमनादास मोरारजी योग्य धर्मलाभ बांचना ।

आप का पत्र मिला । बांच कर समाचार जाने । **आप देवद्रव्य के भाव २।। को पांच करके २।। साधारण खाते में ले जाना चाहते हो; यह जाना परन्तु ऐसा होने से जो पच्चीस मन घी बोलने की भावनावाला होगा, वह बारह मन बोलेगा, इसलिए कुल मिलाकर देवद्रव्य की हानि होने का भय रहता है, अतः ऐसा करना हमें उचित नहीं लगता ।** साधारण खाते की आय को किसी प्रकार के लाग द्वारा बढ़ाया जाना ठीक लगता है । दूसरे गांवों में क्या होता है, इसकी हमें खास जानकारी नहीं है । जहां जहां हमने चौमासे किये हैं वहां अधिकांश देवद्रव्य में ही स्वप्नों की आय जमा होती है । कहीं कहीं स्वप्नों की आय में से अमुक भाग साधारण खाते में ले जाया जाता है । परन्तु ऐसा करनेवाले ठीक नहीं करते, ऐसी हमारी मान्यता है । धर्मसाधन में उद्यम करियेगा ।

द. : '**प्रवीणविजय** के धर्मलाभ'

(६)

प.पू. पाद् आचार्यदेव श्री **विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.** तरफ से शान्ताक्रुझ मध्ये देवगुरु भक्तिकारक सुश्रावक जमनादासभाई योग्य धर्मलाभ । आप का पत्र मिला । पढ़कर समाचार जाने । **सूरत, भरूच, अहमदाबाद, महेसाणा और पाटन में मेरी जानकारी के अनुसार किसी अपवाद के सिवाय स्वप्न की आय देवद्रव्य में जाती है । बड़ौदा में पहले हंसविजयजी लायब्रेरी में ले जाने का प्रस्ताव किया था परन्तु बाद में उसे बदलकर देवद्रव्य में ले जाने की शुरुआत हुई थी । खम्भात में अमरचन्द शाला में देवद्रव्य में होता जाता है । चाणस्मा में देवद्रव्य में जाता है ।** भावनगर की निश्चित जानकारी नहीं है ।

अहमदाबाद में साधारण खाता के लिए प्रतिघर से प्रतिवर्ष अमुक रकम लेने का रिवाज है, जिससे केसर, चन्दन, धोतियां आदि का खर्च हो सकता है । ऐसी योजना अथवा प्रतिवर्ष शक्ति अनुसार पानड़ी की योजना चलाई जाय तो साधारण खाते में ले

जाना तो उचित नहीं लगता । **तीर्थंकर देव को लक्ष्य में रखकर ही स्वप्न हैं तो उनके निमित्त से उत्पन्न रकम देवद्रव्य में ही जानी चाहिए ।**

'गप्प दीपिका समीर' नाम की पुस्तक में प्रश्नोतर में पूज्य स्व. आचार्यदेव विजयानन्दसूरिजी का भी ऐसा ही अभिप्राय छपा हुआ है ।

सबको धर्मलाभ कहना ।

द. : '**हेमन्तविजय** के धर्मलाभ'

(७)

जैन उपाश्रय, कराड़

आचार्य श्री **विजयरामचन्द्रसूरि** की तरफ से धर्मलाभ । **स्वप्न उतारने की क्रिया प्रभु-भक्ति के निमित्त ही होती है । अतः इसकी आमदनी कम हो, ऐसा कोई भी कदम उठाने से देवद्रव्य की आय को रोकने का पाप लगता है इसलिए आपका प्रस्ताव किसी भी तरह योग्य नहीं है परन्तु शास्त्र विरुद्ध है ।** साधारण की आय के लिये अनेक उपाय किये जा सकते हैं ।

अहमदाबाद आदि में स्वप्नों की उपज जीर्णोद्धार में दी जाती है । **जिन-जिन स्थानों में गड़बड़ी होती है या हुई है तो वह अज्ञान का ही परिणाम है । अतः उनका उदाहरण लेकर आत्मनाशक वर्ताव किसी भी कल्याणकारी श्रीसंघ को नहीं करना चाहिए ।**

सब जिनाज्ञा के रसिक और पालक बनें, यही अभिलाषा ।

(८)

श्री मुकाम पाटण से लि० **विजयभक्तिसूरि** तथा पं. कंचनविजयादि ठा. १९ तरफ से-

मु. शान्ताक्रुझ मध्ये देवगुरु भक्तिकारक धर्मरागी जमनादास मोरारजी योग्य धर्मलाभ वांचना । आपका पत्र पहुँचा । समाचार जाने । आपने स्वप्नों की बोली के सम्बन्ध में पूछा उसके उत्तर में लिखना है कि–

पहले ढाई रुपये के भाव से देरासरजी (मन्दिरजी) में ले जाते थे । अब पांच रुपये का प्रस्ताव करके आधा साधारण खाते में ले जाने का विचार करते हो, यह विचारणीय

प्रश्न है। क्योंकि जब ढाई रुपये के पांच रुपये भाव करेंगे तो स्वाभाविक रूप से कम घी बोला जावेगा। इसलिए मूल आवक में परिवर्तन हो सकता है । साथ ही मुनि सम्मेलन के समय-आधा साधारण खाते में ले जाने का निर्णय नहीं हुआ है । **तो भी आप वयोवृद्ध आचार्यश्री विजयसिद्धिसूरिजी तथा विजयनेमिसूरिजी महाराज को पूछ लेना ।**

आप जैसे गृहस्थ धारें तो साधारण में लेशमात्र भी कमी न आवे । न धारें तो कमी आने की है ! **सब से उत्तम मार्ग तो जैसा पहले है वैसा ही रखना है ।** कदाचित् आप के लिखे अनुसार आधा-आधा करना पड़े तो ऊपर सूचित दो स्थानों पर पूछकर कर लेना । यह बराबर ध्यान में लेना । धार्मिक क्रिया करके जीवन को सफल करना । अहमदाबाद तक कदाचित् आने का प्रसंग आवे तो पाटण नगर के देरासरजी की यात्रा का लाभ लेना ।

परिशिष्ट-८

स्वप्नों की आय का द्रव्य, देवद्रव्य ही है !

पूज्यपाद सुविहित आचार्यादि महापुरुषों का शास्त्रानुसारी महत्वपूर्ण आदेश

विक्रम संवत् १९९४ में पू. पाद सुविहित शासन मान्य गीतार्थ आचार्य भगवन्तों का शास्त्रानुसारी स्पष्ट एवं दृढ़ उत्तर यही प्राप्त हुआ कि स्वप्नों की आय को देवद्रव्य ही माना जाए और उसमें जो भी वृद्धि हो वह भी साधारण खाते में न ले जाते हुए देवद्रव्य में ही ले जाई जाए । इसके पश्चात् पुनः वि.सं. २०१० में इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न के सम्बन्ध में वर्तमानकालीन समस्त तपागच्छ के श्वे.मू.पू. संघ के पूज्य सुविहित शासन-मान्य आचार्य भगवन्तों के साथ पत्र-व्यवहार करके उनके स्पष्ट एवं सचोट निर्णय तथा शास्त्रीय मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए वेरावल निवासी सुश्रावक अमीलाल रतिलाल ने जो पत्र-व्यवहार किया और जो उन पू.पाद आचार्य भगवन्तों के उत्तर प्राप्त हुए वे 'श्री महावीर शासन' में प्रसिद्ध हुए । उन्हें पुस्तकाकार प्रदान करने हेतु अनेक भव्यात्माओं का आग्रह होने से तथा वह साहित्य चिरकाल तक स्थायी रह सके इस दृष्टि से पुनः उन्हें प्रकाशित किया जा रहा है ताकि आराधक भाव में रूचि रखनेवाले कल्याणकामी आत्माओं के लिए वह उपयोगी एवं उपकारक बने ।

(१)

अहमदाबाद, श्रावण सुदी १२

परम पूज्य संघ-स्थविर आचार्यदेव श्रीमद् **विजयसिद्धिसूरीश्वरजी** महाराज सा. आदि की तरफ से–

वेरावल मध्ये श्रावक अमीलाल रतिलाल जैन ! धर्मलाभ । आपका पत्र मिला । पढ़कर समाचार ज्ञात हुए । आप के पत्र का उत्तर इस प्रकार हैं :-

चौदह स्वप्न, पारणा, घोड़ियाँ तथा उपधान की माला की बोली का घी-ये सभी आय शास्त्र की दृष्टि से देवद्रव्य में ही जाती है और यही उचित है । तत्सम्बन्धी शास्त्र के पाठ 'श्राद्धविधि' 'द्रव्य सप्ततिका' एवं अन्य सिद्धान्त-ग्रन्थों में हैं । अतः **यह आय**

देवद्रव्य की ही है । इसे साधारण खाते में जो ले जाते हैं वे स्पष्ट रूप से गलती करते हैं । धर्मसाधन में उद्यत रहें ।

लि. आचार्यदेव की आज्ञा से

द. : 'मुनि कुमुदविजय की और से धर्मलाभ'

(२)

अहमदनगर, खिस्ती गली जैन धर्मशाला, सुदी १४

पू. पाद आचार्यदेव श्री **विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.** की तरफ से सुश्रावक अमीलाल रतीलाल योग धर्मलाभ वांचना । तारीख १० का आपका पत्र मिला । चवदह स्वप्न, पारणा, घोड़ियां तथा उपधान की मालादि के घी (आय) को अहमदाबाद मुनि सम्मेलन ने शास्त्रानुसार देवद्रव्य में ले जाने का निर्णय किया है । वही योग्य है । धर्मसाधना में उद्यमवंत रहें ।

द. : 'त्रिलोचन विजय का धर्मलाभ'

(३)

पालीताना साहित्य मन्दिर, ता. ५-८-८४ गुरुवार

पू.आ.भ.श्री **विजय भक्तिसूरीश्वरजी** म. की तरफ से मु. वेरावल श्रावक अमिलाल रतिलाल योग्य धर्मलाभ । आपका पत्र मिला । निम्नानुसार उत्तर जानिए :-

(१) उपधान की माला का घी देवद्रव्य के सिवाय अन्यत्र नहीं ले जाया जा सकता ।

(२) चौदह स्वप्न तथा घोडियाँ-पारणा का घी भी देवद्रव्य में ले जाना ही उत्तम है । इन्हें देवद्रव्य में ही ले जाना धोरी मार्ग है । अहमदाबाद के मुनि सम्मेलन में भी यही निर्णय हुआ है कि इसे मुख्यमार्ग के रूप में देवद्रव्य ही माना जाय । इत्यादि समाचार जानना । देवदर्शन में याद करना ।

लि. विजयभक्तिसूरि (द : स्वयं)

(४)

पावापुरी, सु. १४

पू. परम गुरुदेव श्रीमद् **विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी** म. की तरफ से देवगुरु भक्तिकारक सुश्रावक अमीलाल योग धर्मलाभ । तारीख १० का आपका पत्र मिला । उत्तर में ज्ञात करें कि स्वप्नद्रव्य, पारणा, घोडियां इत्यादि श्री जिनेश्वर देव को उद्देश्य करके घी की बोलियां बोली जाती हैं उनका द्रव्य शास्त्र के अनुसार देवद्रव्य में ही गिना जाना चाहिए । इससे विपरीत रीति से उसे उपयोग में लेनेवाला देवद्रव्य के नाश के पाप का भागीदार होता है ।

धर्म की आराधना में सदा उद्यत रहो यही सदा के लिए शुभाभिलाषा है ।

द. : चारित्रविजय के धर्मलाभ

(स्व. उपाध्यायजी श्री चारित्रविजयजी गणिवर)

(५)

श्रावण सुद ७ शुक्रवार ता. ६-८-५४

गुडा बालोतरा (राजस्थान)

पूज्य आचार्य महाराज श्री **विजय महेन्द्रसूरीश्वरजी** म. आदि की तरफ से-

वेरावल मध्ये सुश्रावक शाह अमीलाल रतिलाल योग धर्मलाभ । आपका पत्र मिला । पढ़कर समाचार ज्ञात हुए । उत्तर में लिखा जाता है कि उपधान की आय देवद्रव्य में जाती है ऐसा ही प्रश्न में उल्लेख है । दूसरी बात यह है कि स्वप्नों की आय के लिए स्वप्न उतारना जब से शुरु हुआ है तब से यह आमदनी देवद्रव्य में ही जाती रही है । इसमें से देरासर के गोठी को तथा नौकरों को पगार (वेतन) दिया जाता है । साधु सम्मेलन में इस प्रश्न पर चर्चा हुई थी । परम्परा से यह राशि देवद्रव्य में गिनी जाती रही है इसलिए देवद्रव्य में ही इसे ले जाने हेतु उपदेश देने का निर्णय किया गया । यहाँ सुखशान्ति है, वहाँ भी सुखशान्ति वरते । धर्मध्यान में उद्यम करना । नवीन ज्ञात करना ।

द. : 'मुनिराज श्री अमृतविजयजी'

(सुविहित आचार्यदेवों की परम्परा से चली आती हुई आचरणा भी भगवान् की आज्ञा की तरह मानने हेतु भाष्यकार भगवान् सूचित करते हैं । निर्वाह के अभाव में देवद्रव्य में से गोठी को या नौकर को पगार दी जाए, यह अलग बात है परन्तु जहाँ निर्वाह किया जा सकता है वहाँ यदि ऐसा किया जाए तो दोष लगता है - ऐसा हमारा मन्तव्य है ।)

(६)

स्वस्ति श्री राधनपुर से लि. आचार्य श्री विजय **कनकसूरिजी** आदि ठाणा १० तत्र श्री वेरावल मध्ये सुश्रावक देवगुरुभक्तिकारक शा. अमीलाल रतिलाल भाई योग्य धर्मलाभ पहुंचे। यहां देवगुरु कृपा से सुखशाता वर्ते है । आपका पत्र मिला । उत्तर निम्न प्रकार से जानना :-

चौदह स्वप्न, पारणा, घोडिया तथा उपधानमाला आदि का घी या रोकड रुपया बोला जाय वह शास्त्र की रीति से तथा सं. १९९० के अहमदाबाद मुनि सम्मेलन में ९ आचार्यों की हस्ताक्षरी सम्मति से पारित प्रस्ताव के अनुसार भी देवद्रव्य है । सम्मेलन में सैंकडों साधु-साध्वी तथा हजारों श्रावक थे । उस प्रस्ताव का किसी ने विरोध नहीं किया । सबने उसे स्वीकार किया ।

धर्मकरणी में भाव रखना, यही सार है । श्रावण सुदी १४

लि. 'विजयकनकसूरि का धर्मलाभ'

(वागडवाला)

पं. दीपविजय का धर्मलाभ वांचना

(स्व. पू.आ.भ. श्री **विजयदेवेन्द्रसूरि** म.)

(७)

भायखला जैन उपाश्रय, लवलेन

बम्बई नं. २७ ता. १५-८-५४

लि. **विजयामृतसूरि. पं. प्रियंकरविजयगणि** (वर्तमान में पू.आ.भ.श्री.विजय प्रियंकरसूरिजी म.) आदि की तरफ से देवगुरु भक्तिकारक श्रावक अमीलाल रतिलाल योग्य धर्मलाभ । आपका कार्ड लालवाड़ी के पते का मिला । यहां प्रातः स्मरणीय गुरु महाराजश्री के पुण्य प्रसाद से सुखशाता वर्त रही है ।

देवद्रव्य के प्रश्न का शास्त्रीय आधार से चर्चा करके साधु सम्मेलन में निर्णय हो चुका है । **अखिल भारतवर्षीय साधु सम्मेलन की एक पुस्तक प्रताकार में प्रकाशित हुई है,** उसे देख लेना । वहाँ आ.विजय अमृतसूरिजी तथा मुनि श्री पार्श्वविजयजी आदि हैं - उन से स्पष्टीकरण प्राप्त करना तथा उनकी सुखशाता पूछना । यही अविच्छिन्न प्रभावशाली श्री वीतराग शासन को पाकर धर्म की आराधना में विशेष उद्यमवंत रहना-यही नरजन्म पाने की सार्थकता है ।

(पू.आ.भ. श्री विजयनीति सू.म. श्री के समुदाय के)

(८)

अहमदाबाद दि. ११-१०-५४

सुयोग्य श्रमणोपासक श्रीयुत् शा. अमीलालभाई जोग, धर्मलाभ । पत्र दो मिले । कार्यवशात् विलम्ब हो गया । खैर । आपने चौदह स्वप्न, पालना, घोडियां और उपधान की माला की घी की बोली की रकम किस खाते में जमा करना-आदि के लिए लिखा । **उसका उत्तर यह है कि परम्परा से आचार्य देवों ने देवद्रव्य में ही वृद्धि करने का फरमाया है । अतः वर्तमान वातावरण में उक्त कार्य में शिथिलता नहीं होनी चाहिये अन्यथा आपको आलोचना का पात्र बनना पड़ेगा ।** किमधिकम् ।

द. : 'वि. हिमाचलसूरि का धर्मलाभ'

(९)

पालीताणा से लि. **भुवनसूरिजी का** धर्मलाभ । कार्ड मिला । समाचार जाने। स्वप्नों की बोली का पैसा देवद्रव्य में ही जाना चाहिए । साधारण खाते में वह नहीं ले जाया जा सकता। पूज्य सिद्धिसूरिजी म. लब्धिसूरिजी म., नेमिसूरिजी म., सागरजी म. आदि ५०० साधुओं की मान्यता यही है । आराधना में रत रहना । पारणा की बोली भी देवद्रव्य में ही जाती है । सुदी १२

(१०)

दाठा (जि. भावनगर) श्रावण सु. १२

पू.पा.आ.श्री. **ऋद्धिसागरसूरिजी** म. सा. तथा मुनि श्री **मानतुंगविजयजी म.** की ओर से-

धर्मलाभ पूर्वक लिखने का है कि यहाँ सुखशाता है । आपका पत्र मिला । समाचार जाने। प्रश्न के उत्तर में जानिये कि **चौदह स्वप्न माता को प्रभुजी के गर्भवास के कारण पुण्यबल से आते हैं इसलिए तत्सम्बन्धी वस्तु देव सम्बन्धी ही गिनी जानी चाहिए ।** भालादि के सम्बन्ध में भी यही बात है । प्रभुजी के दर्शन या भक्ति निमित्त संघ निकलते हैं तब संघ निकालनेवाले संघपति को तीर्थमाला पहनायी जाती थी अर्थात् तीर्थमाला भी प्रभुजी को भक्ति निमित्त हुए कार्य के लिए पहनायी जाती थी; इस कारण उसकी बोली की रकम भी देव का ही द्रव्य गिना जाता है । सब प्रकार की मालाओं के लिए ऐसी ही समझना । तथा **सं. १९९० के साल में अहमदाबाद में प्रस्ताव हुआ है । उस प्रस्ताव में इस द्रव्य को देवद्रव्य ही माना गया है ।**

(११)

भावनगर श्रावण सुदी ६

लि. आचार्य महाराज श्री **विजयप्रतापसूरिजी** म. श्री की तरफ से देवगुरु भक्तिकारक सुश्रावक अमीलाल रतिलाल योग्य धर्मलाभ वांचना ।

यहाँ धर्मप्रसाद से शान्ति है । आप का पत्र मिला । समाचार जाने । आपने १४ स्वप्न, घोडियां, पारणा तथा उपधान की माला की बोली का घी किस खाते में ले जाना । इसके विषय में मेरे विचार मंगवाये । ऐसे धार्मिक विषय में आपकी जिज्ञासा हेतु प्रसन्नता है । आपके यहाँ चातुर्मास में आचार्यादि साधु है तथा वेरावल में कुछ वर्षों से इस विषय की चर्चाएँ, उपदेश, विचार-विनिमय चलता ही रहता है । **मुनिराज इस विषय में दृढ़तापूर्वक घोषणा करते हैं कि वह द्रव्य, देवद्रव्य ही है ।** वे शास्त्रीय आधार से कहते हैं अपने मन से नहीं । शास्त्र की बात में श्रद्धा रखनेवाले उसे स्वीकार करनेवाले भवभीरु आत्माएँ उनकी बात को उसी रूप में मान लेती है ।

द. : 'चरणविजयजी का धर्मलाभ'

(१२)

श्री जैन विद्याशाला, बिजापुर (गुजरात)

लि. आचार्य **कीर्तिसागरसूरि, महोदयसागरगणि** आदि ठाणा ८ की तरफ से श्री वेरावल मध्ये देवगुरु-भक्तिकारक शा. अमीलाल रतिलाल भाई आदि योग्य-धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि आपका पत्र मिला । पढ़कर और समाचार जानकर

आनन्द हुआ है । हम सब सुखशाता में हैं । आप सब सुखशाता में होंगे ।

आपने लिखा कि स्वप्न, पारणा, घोडियां तथा उपधान की माला की बोली का घी किस खाते में ले जाना ? इसका उत्तर है कि **पारणा, घोडिया तथा श्री उपधान की आय या घी देवद्रव्य खाते में ले जाई जाती है । साधारण खाते में नहीं ले जाई जाती ।** अतः उपधान आदि घी की आय देवद्रव्य में ले जानी चाहिए । धर्मसाधना करियेगा ।

(१३)

पगथिया का उपाश्रय. हाजा पटेल की पोल
अहमदाबाद श्रावण सुदी १४

सुश्रावक अमीलाल रतिलाल योग धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि देवगुरु प्रसाद से यहां सुखशाता है । तारीख १०-९-५४ का लिखा हुआ आपका पत्र मिला । समाचार जाने । इस विषय में लिखना है कि –

चौदह स्वप्न, पारणा, घोडियाँ सम्बन्धी तथा उपधान की माला सम्बन्धी आय **देवद्रव्य में आती है । साधारण खाते में उसे ले जाना उचित नहीं है । इस सम्बन्ध में राजनगर के जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि सम्मेलन का ठहराव स्पष्ट निर्देश करता है ।** धर्मसाधना में उद्यमशील रहना ।

लि. 'आ. विजयमनोहरसूरि का धर्मलाभ'

(१४)

तलाजा ता. १३-८-५४

लि. विजयदर्शनसूरि आदि ।

तत्र देवगुरु भक्तिकारक शा. अमीलाल रतिलाल योग्य वेरावल बन्दर; धर्मलाभ । आपने चवदह स्वप्न, घोडिया, पारणा तथा उपधान की माला की उपज साधारण खाते में ले जाना या देवदव्य खाते में ? यह पूछा है । इस विषय में लिखना है कि **जो प्रामाणिक परम्परा चली आ रही है उसमें परिवर्तन करना उचित नहीं है । एक परम्परा तोड़ी जावेगी तो दूसरी परम्परा भी टूट जाने का भय रहता है । अब तक तो वह आय देवद्रव्य खाते ही ले जाई जाती रही है । अतः उसी तरह वर्तन करना उचित प्रतीत होता है ।**

यद्यपि चवदह स्वप्न दर्शन प्रभु की बाल्य अवस्था के हैं परन्तु वे इसी भव में तीर्थंकर होनेवाले हैं इसलिए बाल्यवयरूप द्रव्य निक्षेप को भाव निक्षेप का मुख्य कारण मानकर शुभ कार्य करने हैं अर्थात् त्रिलोकाधिपति प्रभु भगवंत को उद्देश्य में लेकर ही स्वप्न आदि उतारे जाते हैं । जिस उद्देश्य को लेकर कार्य किया जाता हो उसी उद्देश्य में उसे खर्च करना उचित समझा जाता है । अतः त्रिभुवननायक प्रभु को लक्ष्य में रखकर स्वप्नादिक का घी बोला जाता है, इसलिए देवद्रव्य में ही वह आय लगाई जाय, यह उचित मालूम होता है ।

(पू.आ.भ.श्री **विजयनेमिसूरीश्वरजी म.** श्री के पट्ट प्रभावक आचार्य महाराजश्री विजय **दर्शनसूरीश्वरजी** भ. श्रीजी का उक्त अभिप्राय है ।)

(१५)

भुज ता. १२-८-८४

धर्मप्रेमी सुश्रावक अमीलाल भाई,

लि. **भुवनतिलकसूरि** का धर्मलाभ । पत्र मिला । जिनदेव के आश्रित जो घी बोला जाता है वह देवद्रव्य में ही जाना चाहिए, ऐसे शास्त्रीय पाठ हैं । **'देवद्रव्य-सिद्धि' पुस्तक पढ़ने की भलावन है । मुनि सम्मेलन में भी ठहराव हुआ था । देवाश्रित स्वप्न, पारणा या वरघोड़ा आदि में बोली जानेवाली बोलियों का द्रव्य तथा मालारोपण की आय-यह सब देवद्रव्य ही है।** देवद्रव्य के सिवाय अन्यत्र कहीं भी किसी भी खाते में उसका उपयोग नहीं किया जा सकता ।

कुछ व्यक्ति इस सम्बन्ध में अलग मत रखते हैं, परन्तु वह अशास्त्रीय होने से अमान्य है । **देवद्रव्य की वृद्धि करने की आज्ञा है परन्तु उसकी हानि करनेवाला महापापी और अनन्त संसारी होता है, ऐसा शास्त्रीय फरमान है ।** आज के सुविहित शास्त्र-वचन श्रद्धालु आचार्य महाराजाओं का यही सिद्धान्त और फरमान है क्योंकि वे भवभीरु हैं ।

(१६)

अहमदाबाद शाहपुर, मंगलपारेख का खांचा
जैन उपाश्रय सुदी १४

धर्मश्रद्धालु सुश्रावक भाई अमीलाल रतिलाल भाई मु. वेरावल योग्य धर्मलाभ । आप का पत्र मिला । सब समाचार जाने । **चौदह स्वप्न, पारणा, उपधान की माला का घी देवद्रव्य में ले जाना उचित है ।** शास्त्र तथा परम्परा के आधारों को साक्षात में शान्ति से समझाया जा सकता है । धर्म भावना में वृद्धि करना ।

द. धर्मविजय का धर्मलाभ

(उक्त अभिप्राय पू.आ.म. श्री **विजयप्रतापसूरीश्वरजी** म. के पट्टधर पू.आ.म. श्री **विजयधर्मसूरिजी महाराज का** है ।)

(१७)

श्री जैन ज्ञानवर्धक शाला, वेरावल
श्रावण वद १०

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय आचार्यदेव श्रीमद् विजय **अमृतसूरीश्वरजी महाराज** तथा पू. मुनिराज **श्री पार्श्वविजयजी म.** आदि ठाणा ६ की तरफ से-

देवद्रव्य भक्तिकारक सुश्रावक अमीलाल रतिलाल जैन योग्य धर्मलाभ । आप की और से पत्र मिला । पढ़कर समाचार जाने । उत्तर में लिखना है कि–

चवदह स्वप्न, पारणा, घोडिया तथा उपधान की माला की बोली का घी शास्त्रीय आधार से देवद्रव्य में ही ले जाना चाहिए । उसे साधारण खाते में ले जाना शास्त्र और परम्परा के अनुसार सर्वथा अनुचित है । इस संबंध में शास्त्रीय पाठ है ।

द. जिनेन्द्र विजय का धर्मलाभ
(स्व. पू. आ. श्री जिनेन्द्रसूरिजी म.)
मु. लीम्बडी श्रा.सु. ७

(१८)

धर्मविजय आदि की तरफ से–

सुश्रावक अमीलाल रतीलाल मु. वेरावल योग्य ।

धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि आप का पत्र मिला । समाचार विदित हुए । उत्तर में लिखना है कि स्वप्न, पारणा आदि की बोली के घी की आय शास्त्र दृष्टि से देवद्रव्य में जाती है । इसी तरह तीर्थमाला, उपधान की माला आदि के घी की आय भी देवद्रव्य में जाती है । इसके लिए शास्त्र में पाठ है । इसलिए देवद्रव्य में ही उसे ले जाना योग्य है । धर्म साधना में उद्यम करना ।

द. धर्मविजय का धर्मलाभ

(उक्त अभिप्राय पू.आ.म. श्री विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के शिष्य रत्न उपाध्यायजी धर्मविजयजी महाराज का है ।)

(१९)

नागपुर सिटी नं. २ इतवारी बाजार

जैन श्वे. उपाश्रय ता. ११-८-५४

धर्मसागरगणि आदि ठाणा ३ की तरफ से–

सुश्रावक देव-गुरु-भक्तिकारक शाह अमीलाल रतिलाल वेरावल योग्य । धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि आपका पत्र ता. ९-८-५४ का आज मिला । पढ़कर समाचार ज्ञात हुए ।

(१) चवदह स्वप्न, पारणा, घोडिया तथा उपधान की माला आदि का घी शास्त्रीय रीति से तथा परम्परा और ज्ञानियों की आज्ञानुसार देवद्रव्य में ले जाया जाता है । इस सम्बन्ध में अहमदाबाद में सं. १९९० के सम्मेलन में समस्त श्वे. मूर्तिपूजक श्रमण संघ ने एकमत से निर्णय लिया है । वह मंगवाकर पढ़ लेना । इस निर्णय का छपा हुआ पट्टक सेठ आनंदजी कल्याणजी पेढ़ी अहमदाबाद से मिल सकेगा । उसमें स्पष्ट है कि प्रभु जिनेश्वर देव के समक्ष या उनके निमित्त देरासर या उसके बाहर भक्ति के निमित्त जो बोली की रकम आवे वह देवद्रव्य गिनी जाय ।

स्वप्न उदारता तीर्थंकर भगवान का च्यवन कल्याणक हैं । प्रभास पाटण में हमारे गुरुदेव पू. आ.श्री चन्द्रसागरसूरिजी महाराज के हस्त से अंजन शलाका हुई थी । उसमें पांचों कल्याणक की आय देवद्रव्य में ली गई है । तो स्वप्न, पारणा, च्यवन-जन्म-महोत्सव को प्रभुभक्ति के निमित्त बोली गई बोली देवद्रव्य ही गिननी चाहिये । इसमें शंका का कोई स्थान नहीं है । तथापि स्वप्न तो भगवान की माता को आते हैं आदि खोटी दलीलें दी जाती है । इस विषय में जो प्रश्न पूछने हो पूछ सकते हैं । सब का समाधान किया जावेगा ।

इस सम्बन्ध में लगभग सब आचार्यों का एक ही अभिप्राय है जो शान्ताक्रुझ संघ की तरफ से पुछाये गये प्रश्न के उत्तर रूप में 'कल्याण' मासिक में प्रसिद्ध भी हुआ है । 'सिद्धचक्र' पाक्षिक में पू.स्व. आगमोद्धारक श्री सागरजी महाराजा ने भी देवद्रव्य में इस राशि को ले जाना बताया है ।

अहमदाबाद, सूरत, खम्भात, पाटन, महेसाणा, पालीताना आदि बड़े संघ परम्परा से इस राशि को देवद्रव्य में ले जाते हैं । केवल बम्बई का यह चेपी रोग कुछ स्थानों पर फैला हो, यह संभावित है । परन्तु बम्बई में भी कोई स्थानों पर आठ आनी या दशआनी या अमुक भाग साधारण खाते में ले जाया जाता है, परन्तु वह देवद्रव्य मन्दिर के साधारण अर्थात् पुजारी, मन्दिर की रक्षा के लिए भैया, मन्दिर का काम करनेवाले नौकर के वेतन आदि में काम लिया जाता है न कि साधारण अर्थात् सब जगह काम में लिया जा सके इस अर्थ में। इस संबंध में जिसको समझना हो, प्रभु की आज्ञानुसार धर्म पालना हो, व्यवहार करना हो तो प्रत्येक शंका का समाधान योग्य रीति से किया जावेगा ।

(२) उपधान के लिए श्रमण संघ के सम्मेलन का स्पष्ट ठहराव है कि वह देवद्रव्य में ले जाया जाय । इसमें कोई शंका नहीं है, सब जगह ऐसी ही प्रवृत्ति है । बम्बई में दो वर्ष से ठाणा और घाटकोपर में वैसा परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वहां भी संघ में मतभेद है । अतःएव उसे निर्णय नहीं कहा जा सकता ।

तात्पर्य यह है कि उक्त दोनों प्रकार की आय को देवद्रव्य में ले जाना शास्त्र सम्मत एवं परंपरा से मान्य है । यदि कोई समुदाय अपनी मति-कल्पना से इच्छानुसार प्रवृत्ति करे तो वह वास्तविक नहीं मानी जा सकती । सुज्ञेषु किं बहुना ? धर्म ध्यान करते रहना ।

लि. धर्मसागर का धर्मलाभ

टिप्पण-गत वर्ष हमारा चातुर्मास बम्बई आदीश्वरजी धर्मशाला पायधुनी पर था । स्वप्न, पारणा आदि सब आमदानी देवद्रव्य में ले जाने का निश्चित् ठहराव कर श्रीसंघने हमारी निश्रा में स्वप्न उतारे थे । यह आपकी जानकारी हेतु लिखा है । इस संबंध में विशेष कोई जानकारी चाहिए तो खुशी से लिखना । भवभीरुता होगी तो आत्मा का कल्याण होगा । संघ में सब को धर्म लाभ कहना ।

(उक्त अभिप्राय पू.आचार्य म. श्री सागरानन्दसूरीश्वरजी म. श्री के प्रशिष्य रत्न **स्व. उपाध्यायजी म. श्री धर्मसागरजी महाराज** का है ।)

(२०)

श्री नेमीनाथजी उपाश्रय
बम्बई नं. ३ ता. १२-८-५४

लि धुरंधरविजय गणि,

तत्र श्री देवगुरु-भक्तिकारक अमीलाल रतिलाल जैन योग्य धर्मलाभ । आपका पत्र मिला । यहां श्री देवगुरु प्रसाद से सुख शान्ति है । स्वप्नादि की घी की आय के विषय में पूछा सो हमारे क्षयोपशम के अनुसार सुविहित गीतार्थ समाचारी का अनुसरण करनेवाले भव्यात्मा उसे देवद्रव्य में ले जाते हैं । हमें वही उचित प्रतीत होता है । विशेष स्पष्टीकरण साक्षात् में किया जा सकता है । धर्माराधना में यथासाध्य उद्यमवंत रहें ।

(उक्त अभिप्राय पू.आ.म. श्री विजय नेमिसूरीश्वरजी म. श्री के पट्टालंकार पू.आ.म. श्री विजय अमृतसूरीश्वरजी म. श्री के पट्टालंकार स्व. पू.आ.**भ. श्री विजय धर्मधुरन्धरसूरीश्वरजी म.** का है ।)

(२१)

राजकोट ता. ८-८-५४

पं. कनकविजय गणि आदि ठाणा ६ की तरफ से तत्र देव-गुरु-भक्तिकारक श्रमणोपासक सुश्रावक अमीलाल रतिलाल योग्य धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि यहाँ देवगुरु कृपा से सुखशाता है । आपका ता. ४-८-५४ का पत्र मिला । उत्तर में लिखना है कि स्वप्न, पारणा इन दोनों की आय देवद्रव्य में गिनी जाती है । अब तक सुविहित शासनमान्य पू. आचार्य देवों का यही अभिप्राय है । श्री तीर्थंकर देवों की माता इन स्वप्नों को देखती है । अतः उस निमित्त जो भी बोली बोली जाती है वह शास्त्र-दृष्टि से तथा व्यवहारिक दृष्टि से देवद्रव्य ही गिनी जाती है ।

सेन प्रश्न के तीसरे उल्लास में पं. विजयकुशलगणिकृत प्रश्न (३९ वें प्रश्न) के उत्तर में बताया गया है कि देव के लिए जो आभूषण करवाये हों वे गृहस्थ को नहीं कल्पते हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य और संकल्प देव-निमित्त है, अतः गृहस्थ को उनका उपयोग नहीं कल्पता है । उसी प्रकार संघ के बीच में स्वप्नों या पारणों के निमित्त जो बोली बोली जाती है, वह स्पष्ट रूप से देव निमित्त होने से उसकी आय देवद्रव्य मानी है । सं. १९९० के साधु सम्मेलन में भी पू.आचार्य देवों ने मौलिक-रीति से स्वप्नों के द्रव्य को देवद्रव्य मानने का निर्णय दिया है । तदुपरान्त १९९० [१९९४] के वर्ष में शान्ताक्रुझ (बम्बई) के संघ ने ऐसा ठहराव करने का विचार किया कि साधारण खाते में घाटा रहता है, इसलिए स्वप्नों के घी के भाव बढ़ाकर उसका अमुक भाग साधारण खाते में ले जाना । जब गच्छाधिपति स्व. पू.आ.भ. श्री विजय प्रेमसूरीश्वरजी म. श्री को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने श्रीसंघ के प्रसिद्ध विद्यमान पू. आचार्य देवों की सेवा में इस विषयक अभिप्राय परामर्श मांगने हेतु श्रीसंघ को पत्र व्यवहार करने की सूचना की । इस पत्र व्यवहार में जो उत्तर प्राप्त हुए वे सब मेरे पास थे जो 'कल्याण' के दसवें वर्ष में प्रसिद्ध करने हेतु भेजे गये थे । वे आप देख सकते हैं । उससे भी सिद्ध होता है कि स्वप्नों की आय तथा पारणों की आमदनी देवद्रव्य गिनी जाती है । 'उपदेश सप्ततिका' में स्पष्ट उल्लेख है कि देवनिमित्त के द्रव्य का देव-स्थान के सिवाय अन्य स्थान में उपयोग नहीं किया जा सकता ।

माला का द्रव्य देवद्रव्य गिना जाता है । मालारोपण के विषय में 'धर्मसंग्रह' में स्पष्ट उल्लेख है कि ऐन्द्री अथवा माला प्रत्येक वर्ष में देवद्रव्य की वृद्धि हेतु ग्रहण करनी चाहिए। 'श्राद्धविधि' में पाठ है । माला परिधापनादि जब जितनी बोली से किया हो वह सब देवद्रव्य होता है । इसी तरह श्राद्धविधि के अन्तिम पर्व में स्पष्ट प्रमाण है कि श्रावक देवद्रव्य की वृद्धि के लिए मालोद्घाटन करे उसमें इन्द्रमाला अथवा अन्य माला द्रव्य उत्सर्पण द्वारा अर्थात् बोली द्वारा माला लेनी चाहिए। इन सब उल्लेखों से तथा 'द्रव्य सप्ततिका' ग्रन्थ में देव के लिए संकल्पित वस्तु देवद्रव्य है ऐसा पाठ है । देवद्रव्य के भोग से या उसका नाश होता हो तब शक्ति होते हुए भी उसकी उपेक्षा करने से दोष लगते हैं । इस विषय में विशेष स्पष्टता चाहिए तो वहाँ विराजमान पू.आ.म. श्री विजय अमृतसूरीश्वरजी म. श्री से प्राप्त की जा सकती है । पत्र द्वारा अधिक विस्तार क्या किया जाय ?

(उक्त अभिप्राय पू.पाद आचार्यदेव श्रीमद् विजयरामचन्द्रसूरि के पट्टालंकार **आ.भ. श्री विजयकनकचन्द्रसूरि महाराज** का है ।)

(२२)

सादडी श्रा.सु. ७ शुक्रवार पाटी का उपाश्रय

श्रावक अमीलाल रतिलाल !

लि. मुनि **संबोधविजयजी,** धर्मलाभपूर्वक लिखना है कि पत्र मिला । समाचार जाने ।

स्वप्नों का द्रव्य, देवद्रव्य में जावे ऐसी घोषणा गतवर्ष श्री 'महावीर शासन' में हमारे पू.आ.महाराजश्री के नाम से आ गई है । जैसा हमारे पू. महाराजश्री करें उसी प्रकार हम भी मानते हैं और करते हैं । 'श्राद्धविधि ग्रन्थ' तथा 'द्रव्य-सप्ततिका' में स्पष्ट बताया गया है। मुनि सम्मेलन में एक कलम देवद्रव्य के लिए निर्णीत कर दी गई है । उस पर हस्ताक्षर भी है । कि बहुना ।

[पिछले कुछ वर्षों से ऐसी हवा जान बूझकर फैलाई जा रही है कि पू. पाद आचार्य म. श्री विजयानन्दसूरि महाराजश्रीने राधनपुर में स्वप्नों की आय साधारण खाते में ले जाने का आदेश दिया था । वि.सं. २०२२ के हमारे राधनपुर के चातुर्मास में इस बात का सख्त प्रतिकार करने का अवसर प्राप्त हुआ था । उस समय हमारी शुभनिश्रा में श्री जैन शासन के अनुरागी श्रीसंघ ने प्रस्ताव करके राधनपुर में स्वप्नों की आय को देवद्रव्य में ले जाने का निर्णय किया था । इसके पश्चात् तो समस्त राधनपुर श्रीसंघ में सर्वानुमति से स्वप्नों की आय देवद्रव्य में ही जाती है ।

परन्तु पू. पाद आत्मारामजी महाराजजी जैसे शासनमान्य सुविहित शिरोमणि जैन शासन स्तम्भ महापुरुष के नाम से ऐसी कपोलकल्पित मनघडन्त बातें फैलाई जाती हैं, यह सचमुच दुःख का विषय है । उनके द्वारा रचित **'गप्प दीपिका समीर'** नाम के ग्रन्थ में से एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है जो बहुत मननीय और मार्गदर्शक है ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय की आर्या श्री पार्वतीबाई द्वारा लिखित 'समकित सार' पुस्तक की समालोचना करते हुए पू. पाद श्री विजयानन्दसूरीश्वरजी महाराज ने स्वप्न की आय के विषय में जो स्पष्टीकरण किया है उससे स्पष्ट होता है कि 'स्वप्न की उपज देवद्रव्य में ही जाती है।'

यह पुस्तक पू. पाद आत्मारामजी म. श्री के आदेश से उनके **प्रशिष्यरत्न पू. मुनिराज श्री वल्लभविजय महाराजश्रीने** सम्पादित की है, जो बाद में **पू.आ.म. श्री विजयवल्लभसूरि म.श्री के नाम से प्रसिद्ध हुए ।]**

'स्वप्न की आय देवद्रव्य में ही जाती है'

पू. पाद श्री आत्मारामजी महाराज का शास्त्रमान्य एवं सुविहित परम्परानुसार स्पष्ट अभिप्राय ।

(१)

प्रश्न - स्वप्न उतारना, घी चढ़ाना, फिर नीलाम करना और दो तीन रुपये मन बेचना, सो क्या भगवान का घी सौदा है ?

उत्तर - स्वप्न उतारना, घी बोलना आदि धर्म की प्रभावना और जिनद्रव्य की वृद्धि का हेतु है । धर्म की प्रभावना करने से प्राणी तीर्थंकर गोत्र बांधता है, यह कथन श्री ज्ञातासूत्र में है । जिनद्रव्य की वृद्धि करनेवाला भी तीर्थंकर गोत्र बांधता है, यह कथन सम्बोध सत्तरी शास्त्र में है । घी की बोली के वास्ते जो लिखा है उसका उत्तर यों जानो कि जैसे तुम्हारे आचारांगादि शास्त्र भगवान की वाणी दो या चार रुपये में बिकती है, वैसे ही घी के विषय में भी मोल समझो ।

- 'समकित सारोद्धार' में से

[बीसवीं सदी के अद्वितीय शासन प्रभावक, जंगमयुग प्रधानकल्प न्यायांभोनिधि पू. पाद आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयानन्दसूरीश्वरजी महाराजश्री के विशाल सुविहित साधु-समुदाय में भी स्वप्न-द्रव्य की व्यवस्था के विषय में उस समय शास्त्रानुसारी मर्यादा का पालन कितना चुश्तता से और कठोरता से होता था, यह बात निम्नलिखित पत्र-व्यवहार से स्पष्ट प्रतीत होती है । पूज्य आत्मारामजी म. श्री के शिष्यरत्न पू. प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी महाराजश्री के शिष्यरत्न पू. **विद्वान् मुनिप्रवर श्री चतुरविजय महाराजश्री** जो विद्वान् पू. मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.श्री के गुरुवर है, वे नीचे प्रकाशित किये जानेवाले पत्र में स्पष्टरूप से कहते हैं कि 'मेरे सुनने में कभी नहीं आया कि स्वप्नों का द्रव्य उपाश्रय में खर्च करने की सम्मति दी हो ।'

इससे यह स्पष्ट है कि स्वप्न द्रव्य की आय कदापि उपाश्रय में प्रयुक्त नहीं की जा सकती। आज इस पत्र को लिखे कितने ही वर्ष हो चुके हैं, उससे इतना तो समझा जा सकता है कि स्वयं उस समय अर्थात् आज से ६४ वर्ष पहले भी पूज्यपाद आ.भ. श्री

विजया-नन्दसूरिजी महाराजश्री के श्रमण-समुदाय में अरे स्वयं पू.आ.भ. श्री विजयवल्लभसूरिजी महाराजश्री के समुदाय में भी स्वप्नद्रव्य की उपज देवद्रव्य में ही जाती थी । यह शास्त्रानुसारी और सुविहित परम्परामान्य प्रणाली है, जिसे पू. विद्वान् मुनिराजश्री चतुरविजयजी म. जैसे साहित्यकार और अनेक शास्त्र-ग्रन्थों के सम्पादकृ-संशोधक तथा पू.आ.भ. श्री विजय-वल्लभसूरि महाराजश्री के आज्ञावर्ती भी मानते थे और उसके अनुसार प्रवृत्ति करते थे ।

नीचे प्रकाशित किया जानेवाला उनका यह पत्र हमें इस बात की प्रतीति कराता है ।]

(२)

पू. पाद आत्मारामजी महाराज का श्रमण-समुदाय भी स्वप्नों की आय को देवद्रव्य में ले जाने का पक्षधर था और है । एक महत्वपूर्ण पत्र व्यवहार :

ता. ६-७-१७

बम्बई से **लि. मुनि चतुरविजयजी** की तरफ से-

भावनगर मध्ये चारित्रपात्र मुनि श्री भक्तिविजयजी तथा यशोविजयजी योग्य अनुवंदना सुखशाता वांचना । आप का पत्र मिला । उत्तर क्रम से निम्नानुसार है –

पाटन के संघ की तरफ से, आप के लिखे अनुसार कोई ठहराव हुआ हो, ऐसा हमारे सुनने में या अनुभव में नहीं हैं, परन्तु पोलीया उपाश्रय में अर्थात् यति के उपाश्रय में बैठनेवाले स्वप्नों के चढ़ावे में से अमुक भाग उपाश्रय खाते में लेते हैं, ऐसा सुना है, जब कि पाटन के संघ की तरफ से ऐसा (स्वप्नों की आय को उपाश्रय में ले जाने के लिए) कोई ठहराव नहीं हुआ है । तो गुरुजी को अनुमति-सम्मति कहां से हो, यह स्वयं सोचने की बात है । विघ्नसंतोषी व्यक्ति दूसरों की हानि करने के लिए यद्वा तद्वा कुछ कहे उससे क्या ? यदि किसी के पास महाराज के हाथ की लिखित स्वीकृति निकले तो सही हो सकती है अन्यथा लोगों के गप्पों पर विश्वास नहीं करना । मेरी जानकारी के अनुसार कोई भी प्रसंग ऐसा नहीं आया जब स्वप्नों की आय के पैसे उपाश्रय में खर्च करने की उन्होंने सम्मत्ति दी हो । अभी इतना ही ।

द. : चतुरविजय

(३)

पूज्य आत्मारामजी म. के ही आज्ञावर्ती मुनिराजश्री भी स्पष्ट कहते हैं कि स्वप्न की आय देवद्रव्य में ही जाती है ।

[दूसरा महत्त्वपूर्ण पत्र यहाँ प्रकाशित हो रहा है । यह भी बहुत ही उपयोगी बात पर प्रकाश डालता है । पू.आ.भ. श्री विजयानन्दसूरिजी म. श्री अपरनाम पू. आत्मारामजी महाराजश्री के समुदाय में उनके स्वयं के हस्त दीक्षित प्रशिष्यरत्न पू. शान्तमूर्ति मुनिराज हंसविजयजी महाराज-जो पू.आ.भ. श्री विजयवल्लभसूरिजी महाराजश्री के श्रद्धेय तथा आदरणीय थे - ने पालनपुर श्रीसंघ द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में जो जो बातें शास्त्रीय प्रणाली और गीतार्थ महापुरुषों को मान्य हो इस रीति से बताई हैं, वे आज भी उतनी ही मननीय और आचरणीय है । उनमें देवद्रव्य की व्यवस्था, ज्ञानद्रव्य तथा स्वप्नों की आय आदि की शास्त्रानुसारी व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत ही स्पष्ट और सचोट मार्गदर्शन दिया है, जो भारतभर के श्रीसंघों की अनन्त उपकारी परमतारक श्री जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा की आराधना के आराधकभाव को अखण्डित रखने के लिए जागृत बनने की प्रेरणा देता है । सब लोग सहृदय भाव से उस प्रश्नोतरी पर विचार करें ।)

श्री पालनपुर संघ को मालूम हो कि आपने आठ बातों का स्पष्टीकरण करने हेतु मुझे प्रश्न पूछे हैं । उनका उत्तर मेरी बुद्धि के अनुसार आप के सामने रखता हूँ ।

प्रश्न-१ पूजा के समय घी बोला जाता है उसकी उपज किस खाते में लगाई जाय ?

उत्तर-१ पूजा के घी की उपज देवद्रव्य के रूप में जीर्णोद्धार आदि के कार्य में लगाई जा सकती है ।

प्रश्न-२ प्रतिक्रमण के सूत्रों के निमित्त घी बोला जाता है, उसकी आय किस काम में लगाई जाय ?

उत्तर-२ प्रतिक्रमण सूत्र-सम्बन्धी आय ज्ञान खाते में-पुस्तकादि लिखवाने के काम में ली जा सकती है ।

प्रश्न-३ स्वप्नों के घी की आय किस काम में ली जाय ?

उत्तर-३ इस सम्बन्ध के अक्षर किसी पुस्तक में मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुए परन्तु **श्रीसेनप्रश्न** में और **श्रीहीरप्रश्न** नाम के शास्त्र में उपधानमाला पहनने के घी की आय को देवद्रव्य में गिनी है । इस शास्त्र के आधार से कह सकता हूं कि स्वप्नों की आय

को देवद्रव्य के रूप में मानना चाहिये । इस सम्बन्ध में अकेले मेरा ही यह अभिप्राय नहीं है, अपितु श्री विजयकमलसूरीश्वरजी महाराज का तथा उपाध्यायजी वीरविजयजी महाराज का और प्रवर्तक कान्तिविजयजी महाराज आदि महात्माओं का भी ऐसा ही अभिप्राय है कि स्वप्नों की आय को देवद्रव्य मानना ।

प्रश्न-४ केसर, चन्दन के व्यापार की आय किसमें गिनी जाय ?

उत्तर-४ अपने पैसों से मंगाकर केसर-चन्दन बेचा हो और उसमें जो नफा हुआ हो वह अपनी इच्छानुसार खर्च किया जा सकता है । परन्तु कोई अनजान व्यक्ति मन्दिर के पैसों से खरीदी न करले यह ध्यान रखना चाहिए ।

प्रश्न-५ देवद्रव्य में से पुजारी को पगार दी जा सकती है या नहीं ?

उत्तर-५ पूजा करवाना अपने लाभ के लिए है । परमात्मा को उसकी आवश्यकता नहीं। इसलिए पुजारी को पगार देवद्रव्य में से नहीं दी जा सकती । कदाचित् किसी वसति रहित गाँव में दूसरा साधन किसी तरह न बन सकता हो तो चांवल आदि की आय में से पगार दी जा सकती है ।

प्रश्न-६ देव के स्थान पर पेटी रखी जा सकती है या नहीं ?

उत्तर-६ पेटी में साधारण और स्नान के पानी सम्बन्धी खाता न हो तो रखी जा सकती है, परन्तु कोई अनजान व्यक्ति देवद्रव्य या ज्ञानद्रव्य को दूसरे खाते में भूल से न डाले ऐसी पूरी व्यवस्था होनी चाहिये । साधारण खाता यदि पेटी में हो तो वह देव की जगह में उपार्जित द्रव्य श्रावक-श्राविका के उपयोग में कैसे आ सकता है ? यह विचार करने योग्य है ।

प्रश्न-७ नारियल, चांवल, बादाम की आय किसमें गिनी जाय ?

उत्तर-७ नारियल, चांवल; बादाम की आय देवद्रव्य खाते में जमा होनी चाहिए ।

प्रश्न-८ आंगी की बढोत्री किस में गिनी जाय ?

उत्तर-८ आंगी की बढ़ोत्री निकालना उचित नहीं है । क्योंकि उसमें कपट क्रिया लगती है। इसलिए जिसने जितने की आंगी करवाने को कहा है उतने पैसे खर्च करके उसकी तरफ से आंगी करवा देनी चाहिए ।

सद्गृहस्थों ! **जो खाता डूबता हो उसकी तरफ ध्यान देने की खास आवश्यकता है ।** आजकल साधारण खाते की बूम सुनाई पड़ती है, अतः उसे तिराने की खास

जरूरत है । अतः पुण्य करते समय या प्रत्येक शुभ प्रसंग पर शुभ खाते में अवश्य रकम निकालने और निकलवाने की योजना करनी चाहिए, जिससे यह खाता तिरता हुआ हो जावेगा फिर उसकी बूम नहीं सुनाई देगी । यही श्रेय है ।

लि. हंसविजय

(४)

स्वप्न की उपज देवद्रव्य में ही जानी चाहिए ।

स्वप्नों की और मालारोपण की उपज देवद्रव्य में ही जानी चाहिए । इस विषय में पू. **सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का स्पष्ट शास्त्रानुसारी फरमान–**

स्वप्नों की आय के विषय में तथा उपधान तप की माला संबंधी आय के विषय में श्रीसंघ को स्पष्ट रीति से मार्गदर्शन देने हेतु पू. पाद आचार्य भगवंत श्री सागरानन्दसूरीश्वरजी महाराजश्रीने **'सागर समाधान'** ग्रन्थ में जो फरमाया है, वह प्रत्येक धर्माराधक के लिए जानने योग्य है ।

प्रश्न-उपधान में प्रवेश तथा समाप्ति के अवसर पर माला की बोली की आय ज्ञानखाते में न ले जाते हुए देवद्रव्य में क्यों ले जायी जाती है ?

समाधान-उपधान ज्ञानाराधन का अनुष्ठान है, इसलिए ज्ञान खाते में उसकी आय जा सकती है-ऐसा कदाचित् आप मानते हों । परन्तु उपधान में प्रवेश से लेकर माला पहनने तक की क्रिया समवसरण रूप नंदि के आगे होती है । क्रियाएँ प्रभुजी के सम्मुख की जाने के कारण उनकी उपज देवद्रव्य में ले जानी चाहिए ।

प्रश्न-स्वप्नों की उपज तथा उनका घी देवद्रव्य खाते में ले जाने की शुरूआत अमुक समय से हुई है तो उसमें परिवर्तन क्यों नहीं किया जा सकता है ?

समाधान-अर्हन्त परमात्मा की माता ने स्वप्न देखे थे, अतः वस्तुतः उसकी सारी आय देवद्रव्य में जानी चाहिए अर्थात् देवाधिदेव के उद्देश्य से ही यह आय है । ध्यान में रखना चाहिए कि च्यवन, जन्म, दीक्षा - ये कल्याणक भी श्री अरिहंत परमात्मा के ही हैं । इन्द्रादिकों ने श्री जिनेश्वर भगवान की स्तुति भी गर्भावतार से ही की है । चौदह स्तप्नों का दर्शन अरिहन्त भगवान कुक्षि में आवें तभी उनकी माता को होता है । तीन लोक में प्रकाश भी इन तीनों कल्याणकों में होता है । अतः धार्मिक जनों के लिए गर्भावस्था से ही भगवान् अरिहंत भगवान हैं ।

- 'सागर समाधान' से

(५)

स्वप्नादि की उपज देवद्रव्य में ही जावे

वि. सं. १९९० वि.सं. २०१४ इन दोनों श्रमण-सम्मेलन में सर्वानुमति से हुए शास्त्रानुसारी निर्णय

देवद्रव्यादि की व्यवस्था तथा अन्य भी धर्मादा खातों की आय तथा उसका सद्व्यय इत्यादि की शास्त्रानुसारी व्यवस्था के सम्बन्ध में श्रीसंघों को शास्त्रीय रीति से सुविहितमान्य प्रणालिका के अनुसार मार्गदर्शन देने की जिनकी महत्त्वपूर्ण जवाबदारी है, उन जैनधर्म या जैनशासन के संरक्षक पूज्य आचार्य भगवन्तों ने पिछले वर्षों में तीन श्रमण-सम्मेलनों में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक प्रस्तावों द्वारा श्रीसंघ को जो स्पष्ट और सचोट शास्त्रानुसारी मार्गदर्शन दिया है वे महत्त्वपूर्ण उपयोगी निर्णय यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं । ये निर्णय सदा के लिए भारत वर्ष के श्रीसंघों के लिए प्रेरणादायी हैं । इनका पालन करने की श्रीसंघों की अनिवार्य जवाबदारी है ।

श्रमणसंघ सम्मेलन निर्णय

देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य या अन्य जिनमन्दिर उपाश्रय, ज्ञानभण्डार तथा साधारण खाता आदि के द्रव्य की आय को शास्त्रानुसार किस प्रकार सद्व्यय करना, यह श्रीसंघों की जवाबदारी है । श्रमणप्रधान श्रीसंघों को सुविहितशास्त्रानुसारी प्रणाली के प्रति वफादार रहकर पू.पाद परमगीतार्थ सुविहित आचार्य भगवन्तों की आज्ञानुसार सब धार्मिक स्थावर-जंगम जायदाद का वहीवट, व्यवस्था, संरक्षण एवं संवर्धन करना चाहिए । इस बात को लक्ष्य में लेकर श्री श्रमणसंघ सम्मेलन द्वारा किये गये उपयोगी निर्णय यहां प्रसिद्ध किये जा रहे हैं । उनसे सूचित होता है कि **श्रीसंघों को उन निर्णयों का आवश्यकरूप से पालन करना चाहिए ।**

(६)

वि.सं. १९९० में राजनगर (अहमदाबाद) में एकत्रित श्रमण सम्मेलन द्वारा देवद्रव्य सम्बन्धी किया गया महत्त्वपूर्ण निर्णय

१. देवद्रव्य, जिन चैत्य तथा जिनमूर्ति सिवाय अन्य किसी भी क्षेत्र में काम में नहीं लिया जा सकता ।

२. प्रभु के मन्दिर में या मन्दिर के बाहर किसी भी स्थान पर प्रभु के निमित्त जो जो बोलियाँ बोली जावें, वह सब देवद्रव्य कहा जाता है ।

३. उपधान सम्बन्धी माला आदि की उपज देवद्रव्य में ले जाना उचित समझा जाता है।

४. श्रावकों को अपने द्रव्य से प्रभु की पूजा आदि का लाभ लेना चाहिए परन्तु किसी स्थान पर सामग्री के अभाव में प्रभु को पूजा आदि में बाधा आती दृष्टिगोचर होती हो तो देवद्रव्य में से प्रभुपूजा आदि का प्रबन्ध कर लिया जाय । परन्तु प्रभु की पूजा आदि तो अवश्य होनी ही चाहिए ।

५. तीर्थ और मन्दिर के व्यवस्थापकों को चाहिए कि तीर्थ और मन्दिर सम्बन्धी कार्य के लिए आवश्यक धनराशि रखकर शेष धनराशि से तीर्थोद्धार और जीर्णोद्धार तथा नवीन मन्दिरों के लिए योग्य मदद देवे, ऐसी यह सम्मेलन भलावन करता है ।

विजयनेमिसूरि,	**जयसिंहसूरिजी**	**विजयसिद्धिसूरि,**
आनन्दसागर,	**विजयवल्लभसूरि,**	**विजयदानसूरि,**
विजयनीतिसूरि,	**मुनिसागरचन्द,**	**विजयभूपेन्द्रसूरि**
श्री राजनगर जैन संघ,		**कस्तूरभाई मणीभाई**
वंडावीला		ता. १०-५-३४

(मुनि सम्मेलन के इन ठहरावों की मूल प्रति का ब्लाक परिशिष्ट में दिया गया है ।)

(७)

वि.सं. २०१४ सन् १९५७ के चातुर्मास में श्री राजनगर (अहमदाबाद) में रहे हुए श्री श्रमण संघ ने डेला के उपाश्रय में एकत्रित होकर सात क्षेत्रादि धार्मिक व्यवस्था का शास्त्र तथा परम्परा के आधार से निर्णय किया उसकी नकल :-

देवद्रव्य

१. जिन प्रतिमा, २. जैन देरासर (मन्दिर)

देवद्रव्य की व्याख्या :-

प्रभु के मन्दिर में या मन्दिर के बाहर–चाहे जिस स्थान पर प्रभु के पंच कल्याणकादि निमित्त तथा माला परिधापनादि देवद्रव्य वृद्धि के कार्य से आया हुआ तथा गृहस्थों द्वारा स्वेच्छा से समर्पित किया हुआ धन इत्यादि देवद्रव्य कहा जाता है ।

परिशिष्ट-९

देवद्रव्य की रक्षा तथा उसका सदुपयोग कैसे करना ?

स्वप्नद्रव्य देवद्रव्य ही है, यह विषय इस पुस्तिका में स्पष्ट और सचोट रीति से शास्त्रानुसारी परम्परा से जो सुविहित पापभीरु महापुरुषों द्वारा विहित है - प्रतिपादित और सिद्ध हो चुका है । अब प्रश्न यह होता है कि देवद्रव्य की व्यवस्था और उसकी रक्षा किस प्रकार की जाय ? उसका सदुपयोग किस तरह करना ? इस सम्बन्ध में पू. सुविहित शिरोमणि आचार्य भगवन्त श्री **विजयसेनसूरीश्वरजी महाराज** ने श्री 'सेनप्रश्न' ग्रन्थ में जो फरमाया है, उन प्रमाणों द्वारा इस विषय की स्पष्टता करना आवश्यक होने से वे प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

सेनप्रश्न : उल्लास दूसरा पं. श्री कनकविजयजी गणिकृत ।

प्रश्नोत्तर : जिनमें ३७ वां प्रश्न है कि, 'ज्ञानद्रव्य देवकार्य में लगाया जा सकता है या नहीं ?' यदि देवकार्य में लगाया जा सकता है तो देवपूजा में या प्रासादादि के निर्माण में ? इस प्रश्न के उत्तर में स्पष्टरूप से बताया गया है कि, 'देवद्रव्य केवलदेव के कार्य में लगाया जा सकता है और ज्ञानद्रव्य ज्ञान में तथा देवकार्य में लगाया जा सकता है । साधारण द्रव्य सातों क्षेत्र में काम आता है । ऐसा जैन सिद्धान्त है...।'

(**सेन प्रश्न :** पुस्तक : पेज ८७-८८)

इससे यह स्पष्ट है कि स्वप्न द्रव्य सुविहित परम्परानुसार देवद्रव्य ही है तो उसका सदुपयोग देव की भक्ति के निमित्त के अतिरिक्त अन्य कार्यों में किन्हीं भी संयोगों में नहीं हो सकता ।

देवद्रव्य को श्रावक स्वयं ब्याज से ले या नहीं ? श्रावक को देवद्रव्य ब्याज से दिया जा सकता है या नहीं ? तथा देवद्रव्य की वृद्धि या रक्षा कैसी करनी ? इसके सम्बन्ध में 'सेन प्रश्न' में दूसरे उल्लास में, पं. श्री जयविजयजी गणिकृत प्रश्नोत्तर हैं । दूसरे प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट कहा गया है कि,

'मुख्यरूप से तो देवद्रव्य के विनाश से श्रावकों को दोष लगता है, परन्तु समयानुसार उचित ब्याज देकर लिया जाय तो महान् दोष नहीं परन्तु श्रावकों के लिए उसका सर्वथा

वर्जन किया हुआ है, वह निःशूकत्व न आ जाय, इसके लिए है । साथ ही जैन शासन में साधु को भी देवद्रव्य के विनाश में दुर्लभ बोधिता और देवद्रव्य के रक्षण का उपदेश देने में उपेक्षा करने से भवभ्रमण बताया है । अतः सुज्ञ श्रावकों को भी देवद्रव्य से व्यापार न करना ही युक्तियुक्त है । क्योंकि किसी समय भी प्रमाद आदि से उसका उपभोग न होना चाहिए । देवद्रव्य को अच्छे स्थान पर रखना, उसकी प्रतिदिन सार सम्भाल करनी, महानिधान की तरह उसकी रक्षा करनी, इन में कोई दोष नहीं लगता, परन्तु तीर्थंकर नामकर्म के बंध का कारण होता है । जैनेतर को वैसा ज्ञान नहीं होने से निःशूकता आदि असम्भव है । अतः गहनों पर ब्याज से देने में दोष नहीं । अभी ऐसा व्यवहार चलता है ।'

(**सेनप्रश्न :** पुस्तक : पेज १११)

इस से स्पष्ट है कि, देवद्रव्य का उपयोग श्रावक के लिए व्यापारादि के हेतु ब्याज से लेने में भी दोष है । तो फिर देवद्रव्य से बंधवाये गये मकान, दुकान या चाली में श्रावक कैसे रह सकते हैं ? निःशूकता दोष लगने के साथ ही, उसके भक्षण का, अल्पभाड़ा देकर या विलम्ब से भाड़ा देकर उसके विनाश के दोष की बहुत सम्भावना रहती है । 'सेनप्रश्न' में स्पष्ट बताया है कि 'साधु भी यदि देवद्रव्य के रक्षण का उपदेश न करे या उसकी उपेक्षा करे तो भवभ्रमण बढ़ता है ।' इसीलिए पू. पाद आचार्यादि श्रमण भगवन्त 'स्वप्नद्रव्य देवद्रव्य ही है' उसका विनाश होता हो तो अवश्य उसका प्रतिकार करने के लिए दृढतापूर्वक उपदेश करते हैं ।

देवद्रव्य की रक्षा करने से तो तीर्थंकर नामकर्म के बंध का कारण बनता है अर्थात् देवद्रव्य जहां साधारण में ले जाया जाता हो वहां श्री चतुर्विध संघ को, जिनाज्ञारसिक संघ को उसका प्रतीकार करना चाहिए । यह उसका धर्म है, कर्त्तव्य है, यह श्री जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा की आराधना है, यह पू. आ.म. श्री विजयसेनसूरीश्वरजी महाराजश्री के द्वारा फरमाये हुए उपर्युक्त विधान से स्पष्ट होता है ।

'श्रावक अपने घर मन्दिर में प्रभुजी की भक्ति के लिए प्रभुजी के आभूषण करावे, कालान्तर में गृहस्थ कारण होने पर अपने किसी प्रसंग पर उन्हें काम में ले सकता है या नहीं ? पं. श्री विनयकुशल गणि के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए 'सेनप्रश्न' में श्री सेनसूरिजी म. श्री फरमाते हैं कि–

'यदि देव के निमित्त ही कराये गये आभूषण हों तो अपने उपयोग में नहीं लिये जा सकते।'

(**सेनप्रश्न :** प्रश्न : ३९, उल्लास : ३, पेज २०२)

इस से यह स्पष्ट है कि देव के लिए कराये गये, देव की भक्ति के लिए कराये गये आभूषण, घर मन्दिर में देव को समर्पित करने के उद्देश्य से कराये गये आभूषण श्रावक को अपने उपयोग में लेना नहीं कल्पता तो स्वप्न की बोली प्रभु भक्ति निमित्त प्रभु के च्यवन कल्याणक प्रसंग को लक्ष्य में रखकर बोली जाने के कारण देवद्रव्य गिनी जाती है उसका उपयोग साधारण खाते में कभी नहीं हो सकता, यह बात खासतौर से ध्यान में रख लेनी चाहिए ।

'सेनप्रश्न' के तीसरे उल्लास में पं. श्री श्रुतसागरजी गणिकृत प्रश्नोत्तर में प्रश्न है कि, 'देवद्रव्य की वृद्धि के लिए उस धन को श्रावकों द्वारा ब्याज से रखा जा सकता है या नहीं ? और रखनेवालों को वह दूषणरूप होता है या भूषणरूप ? इस प्रश्न का उत्तर पू.आ.म. श्री विजयसेनसूरीश्वरजी महाराज स्पष्ट रूप से फरमाते हैं कि,

श्रावकों को देवद्रव्य ब्याज से नहीं रखना चाहिए क्योंकि निःशूकत्व आ जाता है । अतः अपने व्यापार आदि में उसे ब्याज से नहीं लगाना चाहिये । 'यदि अल्प भी देवद्रव्य का भोग हो जाय तो संकाश श्रावक की तरह अत्यन्त दुष्ट फल मिलता है ।' ऐसा ग्रन्थ में देखा जाता है ।

(**सेनप्रश्न :** प्रश्न २१, उल्लास : ३, पेज २७३)

इससे पुनः पुनः यह बात स्पष्ट होती है कि, **देवद्रव्य की एक पाई भी पापभीरु सुज्ञ श्रावक अपने पास ब्याज से भी नहीं रखे ।** तो जो बोली बोलकर देवद्रव्य की रकम अपने पास वर्षों तक बिना ब्याज से केवल उपेक्षा भाव से रखे रहते हैं, भुगतान नहीं करते हैं, उन बिचारों की क्या दशा होगी ? इसी तरह बोली में बोली हुई रकम को अपने पास मनमाने ब्याज से रखे रहते हैं, उनके लिए वह कृत्य सचमुच सेनप्रश्नकार पूज्यपादश्री फरमाते हैं उस तरह 'दुष्ट फल देनेवाला बनता है' यह निःशंक है ।

'देवद्रव्य के मकान में भाड़ा देकर रहना चाहिये या नहीं ?' इस विषय में पं. हर्षचन्द्र गणिवर कृत प्रश्न इस प्रकार हैं :-

'किसी व्यक्ति ने अपना घर भी जिनालय को अर्पण कर दिया हो, उसमें कोई भी

श्रावक किराया देकर रह सकता है या नहीं ?' इस प्रश्न के उत्तर में पू.आ.म. श्री सेनसूरिजी फरमाते हैं कि - 'यद्यपि किराया देकर उसमें रहने में दोष नहीं लगता तो भी बिना किसी विशेष कारण के उस मकान में भाड़ा देकर भी रहना उचित नहीं लगता क्योंकि देवद्रव्य के भोग आदि में निःशूकता का प्रसंग हो जाता है ।'

(**सेनप्रश्न,** उल्लास ३ पैज २८८)

पू.आ.म.श्री वि. सेनसूरिजी महाराज ने जो जगद्गुरु आ.म.श्री विजयहीरसूरि म. श्री के पट्टालंकार थे - कितनी स्पष्टता के साथ यह बात कही है । आज यह परिस्थिति जगह-जगह देखने में आती है । देवद्रव्य से बंधवाये हुए मकानों में श्रावक रहकर समय पर भाड़ा देने में आनाकानी करते हैं, उचित रीति से भी किराया बढ़ाने में टालमटोल करते हैं और देवद्रव्य की सम्पत्ति को नुकसान पहुंचता है, इस विषय में उन्हें तनिक भी खेद नहीं होता । देवद्रव्य के रक्षण की बात तो दूर, परन्तु उसके भक्षण तक की निःशूकता आ जाती है । यह कई जगह देखने में जानने में आया है । इस दृष्टि से पू.आ.म. श्री ने स्पष्टता करके बता दिया है कि 'यह उचित नहीं लगता' यह बहुत ही समुचित है ।

देवद्रव्य के विषय में उपयोगी कई बातें बारबार यहाँ इसीलिये कहनी पड़ रही है कि, 'सुज्ञ वाचकवर्ग के ध्यान में यह बात एकदम स्पष्ट रीति से दृढ़ता के साथ आ जावे कि देवद्रव्य की रक्षा के लिए तथा उसके भक्षण का दोष न लग जावे इसके लिए 'सेनप्रश्न' जैसे ग्रन्थ में कितना जोर दिया गया है ।'

अभी कई स्थानों पर गुरुपूजन का द्रव्य वैयावच्च में ले जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है । परन्तु सही तौर पर गुरुपूजन का द्रव्य देवद्रव्य ही गिना जाता है । इस बात की स्पष्टता करना यहाँ प्रासंगिक मानकर उस सम्बन्ध में पू. पाद जगद्गुरु तपागच्छाधिपति आचार्य म. श्री हीरसूरीश्वरजी म. श्री को पूछे गये प्रश्नों के उत्तर रूप 'हीर प्रश्न' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में से प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे है :-

'हीर प्रश्न के तीसरे प्रकाश में पू. पं. नागर्षिगणि के तीन प्रश्न इस प्रकार हैं - (१) गुरु पूजा सम्बन्धी स्वर्ण आदि द्रव्य गुरुद्रव्य कहा जाय या नहीं ? (२) पहले इस प्रकार की गुरुपूजा का विधान था या नहीं ? (३) इस द्रव्य का उपयोग किस में किया जाय ? यह बताने की कृपा करें ।'

उक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए पू.आ.म. जगद्गुरु विजय हीरसूरीश्वरजी म. श्री

फरमाते हैं कि 'गुरु पूजा संबंधी द्रव्य स्वनिश्राकृत न होने से गुरुद्रव्य नहीं होता जब कि रजोहरण आदि स्वनिश्राकृत होने से गुरुद्रव्य कहे जाते हैं ।'

(२) पू.आ.म.श्री हेमचन्द्रसूरि महाराजश्री की कुमारपाल महाराजा ने स्वर्ण-कमलों से पूजा की थी, ऐसे अक्षर कुमारपाल प्रबंध में है । तथा धर्मलाभ 'तुम्हें धर्म का लाभ मिले' इस प्रकार दूर से जिन्होंने हाथ ऊंचे किये हैं, 'ऐसे पू. श्री सिद्धसेनसूरिजी म. को विक्रमराजा ने कोटि द्रव्य दिया ।' 'इस गुरु पूजा रूप द्रव्य का उस समय जीर्णोद्धार में उपयोग किया गया था ।' ऐसा उनके प्रबन्ध आदि में कहा गया है । इस विषय में बहुत कहने योग्य है । कितना लिखें...। (**हीर प्रश्न** प्रकाश ३ : पेज १९६)

उपरोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि पू.आ.म. श्री विजयहीरसूरीश्वरजी महाराजश्री जैसे समर्थ गीतार्थ सूरिपुरन्दर भी गुरुपूजन के द्रव्य का उपयोग जीर्णोद्धार में करने का निर्देश करते हैं। इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि गुरुपूजा का द्रव्य देवद्रव्य ही गिना जा सकता है ।

इस प्रसंग पर यह प्रश्न होता है कि - गुरुपूजन शास्त्रीय है कि नहीं ? यद्यपि इस प्रश्न के उद्‌भव का कोई कारण नहीं हैं, क्योंकि उपरोक्त स्पष्ट उल्लेख से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल में गुरुपूजन की प्रथा चालू थी तथा नवांगी गुरुपूजन की भी शास्त्रीय प्रथा चालू थी। इसीलिए पू.आ.म. की सेवा में पं. नागर्षि गणिवर ने प्रश्न किया है कि 'पूर्वकाल में इस प्रकार के गुरुपूजन का विधान था या नहीं ?' उसका उत्तर भी स्पष्ट दिया गया है कि, 'हाँ परमार्हत श्री कुमारपाल महाराजा ने गुरुपूजन किया है ।' तो भी इस विषय में पं. श्री वेलर्षिगणि का एक प्रश्न है कि, 'रुपयों से गुरुपूजा करना कहाँ बताया है ?' प्रत्युत्तर में पू.आ.म. श्री हीरसूरीश्वरजी महाराज श्री फरमाते हैं कि, 'कुमारपाल राजा श्री हेमचन्द्राचार्य की सुवर्ण-कमल से सदा पूजा करता था ।' कुमारपाल प्रबंध आदि में ऐसा वर्णन है । उसका अनुसरण करके वर्तमान समय में भी गुरु की नाणा (द्रव्य) से पूजा की जाती हुई दृष्टिगोचर होती है । नाणा भी धातुमय है । इस विषय में इस प्रकार का वृद्धवाद भी है कि, श्री सुमति साधुसूरि के समय में मांडवगढ़ में मलिक श्री माफरे ने गीतार्थों की सुवर्ण टांकों से पूजा की थी ।

(**हीर प्रश्न :** ३ प्रकाश : पेज २०४)

उक्त उल्लेख से दीप के समान स्पष्ट है कि गुरुपूजा की प्रणाली प्राचीन और

सुविहित परम्परा मान्य है । (३) गुरुपूजन का द्रव्य देवद्रव्य गिना जाता है और जीर्णोद्धार के कार्य में ही लगाया जाता है, यह भी वास्तविक और सुविहित महापुरुषों की परम्परा से मान्य है ।

इस विषय में द्रव्य सप्ततिका आदि अनेक ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं । परन्तु यहां इस छोटी पुस्तिका में उन सब का विस्तार करना अप्रासंगिक होने से संक्षेप में स्वप्न द्रव्य, देवद्रव्य है और उसका उपयोग प्रभु-भक्ति के कार्य में होता है तथा उसका रक्षण और व्यवस्था कैसी करनी-इत्यादि विषयों को ध्यान में रखकर उपयोगी बातों का बहुत ही स्पष्टता और सचोट रीति से, पुनरुक्ति दोष की चिन्ता न करते हुए प्रतिपादन किया गया है।

सुज्ञ वाचकवर्ग हंसक्षीर न्याय से निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत पुस्तिका का अवगाहन करके शान्त-स्वस्थ चित्त से मनन-निदिध्यासन करके सार को ग्रहण करे; यही शुभ-कामना ।

स्वप्न द्रव्य - देवद्रव्य ही है।

पुस्तक में से साभार

परिशिष्ट-१०

प्रभुपूजा स्वद्रव्य से ही क्यों ?

"विश्व कल्याणकारी, अनंतकरुणानिधान सर्वोत्कृष्ट उपकारी अरिहंत परमात्मा की भक्ति, मुक्ति की दूती है। परमात्मा की भक्ति, भक्त द्वारा स्वयं के अंतःकरण का भक्तिभाव, कृतज्ञभाव, समर्पणभाव व्यक्त करने के लिए करनी होती है। और इसीलिए स्वयं को जो प्राप्त हुआ, वह अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा की सेवा में समर्पित करना है।" इतने स्पष्ट मंतव्य के बाद भी प्रभु पूजा परद्रव्य से क्यों नहीं होती? देवद्रव्य से क्यों नहीं होती? ऐसा प्रश्न वर्तमान काल में चर्चा का विषय बनाया गया है।

ऐसे लोग कहते हैं कि - 'प्रभुपूजा स्वद्रव्य से ही करनी चाहिए'- ऐसा कोई नियम नहीं है। 'क्या ऐसा कोई एकांत नियम है कि प्रभुपूजा परद्रव्य से या देवद्रव्य से नहीं ही की जा सकती'- इस प्रकार एकांत शब्द को निरर्थक प्रस्तुत करके स्वद्रव्य से प्रभुपूजा के शास्त्रीय विधान के सामने अरुचि उत्पन्न करके 'प्रभुपूजा के लिए परद्रव्य या देवद्रव्य का उपयोग किया जा सकता है, इसमें कोई दोष नहीं है परंतु लाभ ही है', इस प्रकार का प्रतिपादन किया जा रहा है; और इस विचारधारा का प्रचार इस प्रकार हो रहा है कि जिससे अज्ञानी अल्प वर्ग भ्रम में पड़े और दुविधा का अनुभव करें।

देवगृहे देवपूजापि - जिन मंदिर में जिनपूजा
स्वद्रव्येणैव - भी स्वद्रव्य से ही
यथाशक्ति कार्या - यथाशक्ति करनी चाहिए
पूजा च वीतरागानां - वीतराग परमात्मा की
स्वविभवोचित्येन। - पूजा अपने वैभव के अनुसार करनी चाहिए
'विभवानुसारेण - वैभव के अनुसार पूजन
यत्पूजनम् ।' - करना चाहिए
'यथालाभं' - जैसी आय हो, तदनुसार
नियविहवाणुरूवं । - अपने वैभव के अनुरूप
'स्वशक्त्यानुसारेण - अपनी शक्ति के अनुसार
जिनभक्तिः कार्या' - जिनभक्ति करना

इस प्रकार के अनेक शास्त्र पाठ विद्यमान होने पर भी और ऐसे पाठ अनेक बार प्रस्तुत करने पर भी, इस प्रकार का प्रचार चल रहा है और चलाया जा रहा है।

स्वनाम धन्य सिद्धांतमहोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज** की तारक निश्रा में प्रस्तुत विषय पर सुंदर प्रकाश डालने वाला एक अति मानवीय प्रवचन इस समय प्रकाशित किया जा रहा है।

यह प्रवचन विक्रम संवत २००६ की साल में पालिताणा के चातुर्मास में पूज्यपाद **प्रवचनकार श्रीमद विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा** ने किया था जो उस समय 'जैन प्रवचन' साप्ताहिक में और उसके बाद 'चारगति के कारण' पुस्तक में प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार आजसे ५३(६०) वर्ष पूर्व किया गया यह प्रवचन वर्तमान परिस्थिति में आज भी उतना ही प्रासंगिक, मार्गदर्शक और उपकारक है।

जो भी वाचक पूर्वाग्रह का सर्वथा त्याग करके मुक्त मन से सत्य प्राप्त करने की भावना से इस प्रवचन का पठन करेगा, उसे सत्यमार्ग प्राप्त होगा। ऐसा विश्वास किंचित भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा।

x x x देवद्रव्य में से श्रावकों द्वारा पूजा कराने की बातें :

आज इतने अधिक जैन जीवित होने पर भी और उनमें भी समृद्धशाली जैनों के होने के बावजूद एक ऐसा शोर उठ रहा है कि 'इन मंदिरों की रक्षा कौन करेगा? देखरेख कौन करेगा? भगवान की पूजा के लिए केसर आदि चाहिए वह कहाँ से लाएंगे? स्वयं की कहलाती भगवान की पूजा में देवद्रव्य का उपयोग क्यों नहीं हो सकता? आज ऐसा भी प्रचार चल रहा है कि 'भगवान की पूजा में देवद्रव्य का उपयोग करने लगो।' कई स्थानों पर तो ऐसे लेख भी लिखे जाने लगे हैं कि 'मंदिर की आवक में से पूजा की व्यवस्था करिए।' इस प्रकार का पढ़कर या सुनकर मन में यह भाव आते हैं कि क्या जैनों का अस्तित्व खत्म हो गया है ? देवद्रव्य पर सरकार की नजर बिगड़ गयी है इस प्रकार कहा जाता है। परंतु आज बातें तो ऐसी हो रही हैं कि देवद्रव्य पर जैनों की नीयत बिगड़ी है, ऐसा लगता है। अन्यथा भक्ति स्वयं को करनी है और उसके हेतु देवद्रव्य का उपयोग करना है, यह किस तरह हो सकता है?

आपत्ति काल में देवद्रव्य में से भगवान की पूजा की जाय, यह अलग बात है और श्रावकों को पूजा करने की सुविधा देवद्रव्य में से दी जाए, यह अलग बात है। जैन क्या इतने गरीब हो गये हैं कि स्व-द्रव्य से भगवान की द्रव्यपूजा नहीं कर सकते हैं? इस हेतु देवद्रव्य में से उनके द्वारा भगवान की पूजा करानी है?

जैनों के हृदय में यह बात होनी चाहिए कि 'मुझे अपने द्रव्य से ही भगवान की द्रव्य पूजा करनी है।' देवद्रव्य की बात तो दूर है परंतु अन्य श्रावक के द्रव्य से भी यदि पूजा करने को कहा जाय तो जैन कहते थे 'उसके द्रव्य से हम पूजा करें तो इसमें हमें क्या लाभ? हमें तो अपनी ही सामग्री से भक्ति करनी है!'

श्रावक को द्रव्यपूजा क्यों करनी चाहिए? आरंभ और परिग्रहग्रस्त यदि शक्ति होने पर भी द्रव्य पूजा के स्थान पर भाव पूजा करता है तो वह पूजा बाँझ मानी जायेगी। श्रावक परिग्रह के विष को दूर करने के लिए भगवान की द्रव्यपूजा करें। परिग्रह का ज़हर तीव्र है न? उस ज़हर को उतारने के लिए द्रव्यपूजा है। मंदिर में जाएं और कोई केसर की कटोरी दे, उससे पूजा करें, तो इससे क्या परिग्रह का जहर उतरेगा? स्वयं के द्रव्य का उपयोग होता हो तो मन में यह भाव हो 'मेरा धन शरीरादि के लिए तो खूब उपयोग में आया। उसमें जाने वाले धन से पाप में वृद्धि होती है। जब कि तीन लोक के नाथ की भक्ति में यदि मेरे धन का उपयोग हो तो वह सार्थक है।' **स्वयं के द्रव्य से पूजा करने में भाव वृद्धि का जो प्रसंग है वह अन्य के द्रव्य से पूजा करने में नहीं। यदि भाव पैदा करने का कारण ही न हो तो भाव पैदा हों ही कैसे?**

धनहीन श्रावक सामायिक लेकर जिन मंदिर जाए :

सभा : *सुविधा के अभाव में जो जिन पूजा किए बिना रह जाते हों, उन्हें यदि सुविधा दी जाए तो लाभ होगा न?*

जिन पूजा करने की सुविधा कर देने का मन हो ये तो अच्छी बात है। आपको यों होगा कि 'हम तो अपने द्रव्य से प्रतिदिन जिनपूजा करते हैं, परंतु अनेक श्रावक ऐसे हैं जिनके पास सुविधा नहीं। ऐसे लोग भी जिनपूजा के लाभ से वंचित न रह जाएँ तो अच्छा।' ऐसा विचार आपके लिए शोभास्पद है। परंतु ऐसे विचारों के साथ यह भी विचार आने चाहिए कि 'स्वयं के द्रव्य से जिनपूजा करने की जिनके पास सुविधा नहीं है, उन्हें अपने द्रव्य से सुविधा कर देनी चाहिए।' इस प्रकार के भाव मन में आते ही 'जिनके पास पूजा करने की सुविधा नहीं, वे भी पूजा करने वाले बनें इस हेतु हमें अपने द्रव्य का व्यय करना है'- ऐसा निर्णय यदि आप करें, तो वह आपके लिए लाभ का कारण है। परंतु जिन पूजा करने वाले का स्वयं का मनोभाव कैसा हो उसकी यहाँ चर्चा चल रही है।

सभा : *अन्य के द्रव्य से पूजा करने वाले के मन में उत्तम भाव आएंगे ही नहीं?*

अन्य के द्रव्य से जिन पूजा करने वाले को अच्छे भाव आने के कारण क्या हैं? स्वयं जिनपूजा के लिए खर्च नहीं कर सकते, इस प्रमाण में उनके पास द्रव्य नहीं है, और जिनपूजा से वंचित रहते हैं, जो उन्हें पसंद नहीं है, अतः वे परद्रव्य से जिनपूजा करते हों तो उसे 'पूजा में परद्रव्य का उपयोग करना पड़ता है और स्व-द्रव्य का उपयोग नहीं कर सकता है।' यह उसे खटकता है, यह तय है । इस दृष्टि से उसकी इच्छा तो स्व-द्रव्य से ही पूजा करने की हुई न? शक्ति नहीं है इस कारण से ही वह परद्रव्य से पूजा करता है न? यदि उसे मौका मिले तो वह स्व-द्रव्य से पूजा करने में कभी भी नहीं चूकेगा। यदि ऐसी मनोवृत्ति हो तो अच्छे भाव आ सकते हैं, क्योंकि जिसने परिग्रह की मूर्च्छा को उतारकर पूजा का साधन प्रदान किया, उसकी तो वह अनुमोदना करता ही है, परंतु विचारणीय बात तो यह है कि आज जो लोग स्व-द्रव्य को व्यय किये बिना ही पूजा करते हैं, क्या वे गरीब हैं या पूजा के लिए कोई खर्च नहीं ही कर सकते?

जो श्रावक धनहीन होते हैं, उनके लिए शास्त्रों में कहा है कि ऐसे श्रावकों को घर पर सामायिक लेना चाहिए। फिर यदि किसी का कोई ऐसा कर्ज न हो कि जिसके कारण धर्म की लघुता होने का प्रसंग उपस्थित हो, तो वह श्रावक सामायिक में स्थिर रहकर एवम् ईर्यासमिति आदि का पालन करते हुए जिनमंदिर में जाए और वहाँ जाकर वह श्रावक देखे कि 'क्या मैं अपने शरीर के श्रम से किसी गृहस्थ की देवपूजा की सामग्री के कार्य में मददरूप हो सकता हूँ?' जैसेकि किसी धनवान श्रावक ने प्रभु पूजा के हेतु पुष्प प्राप्त किये हों और उन पुष्पों की माला बनानी हो, ऐसा कोई कार्य हो तो वह श्रावक सामायिक पालते हुए उस कार्य को करने के साथ द्रव्य पूजा का भी लाभ प्राप्त कर ले।

शास्त्रों ने यहाँ स्पष्ट किया है कि, द्रव्य पूजा की सामग्री स्वयं के पास नहीं है और द्रव्य पूजा के लिए आवश्यक सामग्री का खर्च निर्धनता के कारण यदि स्वयं नहीं कर सकता है, इसीलिए सामायिक का पालन करते हुए अन्य की सामग्री द्वारा वह इस प्रकार का लाभ प्राप्त करे। सो योग्य ही है। **पुनश्च शास्त्रों में यह भी कथन है कि प्रतिदिन जो अष्टप्रकारी पूजा नहीं कर सकता हो वह कम से कम प्रतिदिन अक्षत पूजा करने के द्वारा पूजा का आचरण करे।**

संघ की सामग्री से पूजा करने वालों से..... :

शास्त्रों में ऐसी स्पष्ट बातों का कथन होने पर भी श्रावकों द्वारा देवद्रव्य से केसर आदि की पूजा कराने की बातें शास्त्र पाठों के नाम से की जा रही है और उसमें दिनोंदिन सम्मति देनेवालों की वृद्धि होती जा रही है।

जिनपूजा के संबंध में आज अनेक स्थानों पर स्नानादि की व्यवस्था की गई है। परंतु वहाँ क्या होता है वह देखो। नहानेवाले १५०० और पूजा करने वाले ५०० ऐसी दशा है। पूजा करने वाले भी ऐसे पूजा करते हैं मानो उपकार कर रहे हों। पूजा करने के पश्चात् थाली और कटोरी इधर-उधर रख देते हैं और पूजा के वस्त्र उतारकर जहाँ-तहाँ फेंक देते हैं? **पूजा के वस्त्रों के संबंध में भी शास्त्रों में तो इस प्रकार की विधि कही है कि, संभव हो तब तक दूसरों के कपड़े न पहनें और स्वयं के वस्त्र भी शुद्ध रक्खें, अन्यथा आशातना का पाप लगेगा।**

कुमारपाल राजा के पूजा करने के वस्त्रों का एक बार बाहड़ मंत्री के छोटे भाई चाहड़ ने उपयोग किया था, इससे कुमारपाल ने उन वस्त्रों को पूजा के लिए नहीं पहने और चाहड़ से नये वस्त्र लाने को कहा। चाहड़ ने कहा कि ये वस्त्र बम्बेरा नाम की नगरी से आते हैं और वहाँ का राजा जो वस्त्र भेजता है, वह उनका एकबार उपयोग करके ही यहाँ भेजता है। तुरंत ही कुमारपाल ने पूजा के वस्त्र अन्य किसी के द्वारा उपयोग में लिये बिना प्राप्त हों - ऐसी व्यवस्था करने की आज्ञा की। इस हेतु कुमारपाल ने विपुल धनराशि खर्च की। क्योंकि शक्ति के अनुसार भावना जागृत हुए बिना नहीं रहती।

महाराज श्रेणिक प्रतिदिन जवला बनवाते थे। ऐसे-ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। यह तुमने सुना है या नहीं? सुनने के पश्चात् भी तुम्हारी पूजा की सामग्री तुम्हारी शक्ति के अनुसार है? **अपने यहाँ पश्चानुपूर्वी क्रमानुसार विवेचन उपलब्ध है, पूर्वानुपूर्वी क्रम से भी विवेचन आता है और अनानुपूर्वी क्रम से भी विवेचन आता है। यहाँ देवपूजा की बात बाद में रखी गई और संविभाग की बात पहले प्रस्तुत की गई। उसमें जो हेतु है वह समझने योग्य है। स्वयं की वस्तु का त्याग करने की और उसके सदुपयोग करने की वृत्ति के बिना यदि पूजा की जाय तो ऐसी पूजा का कोई महत्त्व नहीं होता।** सामान्य स्थिति में भी उदार हृदय का श्रावक जिस रीति से देवपूजा कर सकता है, उस प्रकार से तो कृपण श्रीमंत भी देवपूजादि नहीं कर सकता।

कुछ पूजा करनेवाले भगवान को तिलक करते हैं, वह भी ऐसा अविवेक से करते हैं मानो उन्हें पूजा का कोई ध्यान ही नहीं। भगवान के प्रति उसके अंतःकरण में कितना सम्मान होगा, ऐसा विचार उसे पूजा करता देखकर हो जाता है। **यदि भगवान के प्रति सच्चा भक्तिभाव होता, 'भगवान की पूजा मुझे अपने द्रव्य से ही करनी चाहिए' ऐसा ख्याल होता और 'मैं कमनसीब हूँ कि स्व-द्रव्य से मैं जिनपूजा करने में समर्थ नहीं'- ऐसा लगता होता, तो वह शायद संघ द्वारा की गई व्यवस्था का लाभ लेकर पूजा करता। तब भी वह इस प्रकार करता कि उसकी प्रभुभक्ति और भक्ति करने की मनोजागृति तुरंत ही दृष्टव्य होती। स्व-द्रव्य से पूजा करनेवालों को वह हाथ जोड़ता और स्व-काया से जिनमंदिर की तथा जिनमंदिर की सामग्री की जितनी भी देख-रेख हो सकती हो उसे करने में वह कभी न चूकता। आज तो ऐसी सामान्य बातें भी यदि कोई साधु भी कहे तब भी कुछ लोगों को भारी लगती हैं।**

आपके पास द्रव्य होने पर भी दूसरे के द्रव्य से पूजा करो तो उसमें 'आज मेरा श्रीमंतपना सार्थक हुआ' ऐसा भाव प्रकट करने के लिए कोई अवकाश है क्या? वास्तव में भक्ति के भाव में त्रुटि आई है। इसीलिए आज उल्टे-सीधे विचार सूझते हैं। जिनमंदिर में रखी हुई सामग्री से ही पूजा आदि करनेवालों का विवेकहीनपना दिखाई देता है, उसका कारण क्या? **स्वयं की सामान्य मूल्य की वस्तुओं की भी वह जिस तरह संभाल करता है, उतनी मंदिर की बहुमूल्य वस्तुओं की वह संभाल नहीं करता। वास्तव में तो जिन मंदिर या संघ की छोटी से छोटी, साधारण से साधारण मूल्य की वस्तुओं की भी अच्छे से अच्छे प्रकार से संभाल करनी चाहिए।**

आज 'मुझे स्वद्रव्य से ही जिन पूजा करनी चाहिए'- यह बात बिसरती जा रही है और इसीलिए जिन स्थानों पर जैनों के अधिकाधिक घर होते हैं, उनमें भी संपन्न स्थिति वाले घर होते हैं, वहाँ पर भी केसर और चंदन के खर्च के लिए चिल्ल-पों मचने लगी है। इसके उपाय स्वरूप देवद्रव्य से जिनपूजा करने के बदले, सामग्री संपन्न जैनों को अपनी-अपनी सामग्री से शक्ति के अनुसार पूजा करने का उपदेश देना चाहिए।

देवद्रव्य के रक्षणार्थ भी इस देवद्रव्य में से श्रावकों की पूजा की सुविधा देने का मार्ग योग्य नहीं। देवद्रव्य का दुरुपयोग रोकना हो और सदुपयोग कर लेना हो, तो आज जीर्ण मंदिर कम नहीं हैं। समस्त मंदिरों के जीर्णोद्धार करने का निर्णय

करो तो उन सबके लिए पर्याप्त हो सके इतना देवद्रव्य भी नहीं है। परंतु देवद्रव्य में से श्रावकों के लिए पूजा की व्यवस्था करना और श्रावकों को देवद्रव्य में से प्राप्त सामग्री द्वारा पूजा करनेवाला बना देना यह तो उनके उद्धार का नहीं परंतु उनको डुबा देने का कार्य है।

पूजा स्वद्रव्य से ही करनी चाहिए :

जिनपूजा कायिक, वाचिक और मानसिक - तीन प्रकार की कही गई है। जिनपूजा हेतु आवश्यक सामग्री स्वयं इकट्ठी करना वह कायिक, देशान्तरादि से उस सामग्री को मंगाना वह वाचिक और नंदनवन के पुष्प आदि जो भी सामग्री प्राप्त न की जा सके उसकी कल्पना द्वारा उससे पूजा करना वह मानसिक! दूसरों की सामग्री से पूजा करनेवाले इन तीन में से किस प्रकार की पूजा कर सकते हैं?

शास्त्रों में तो गृह मंदिर में उत्पन्न देवद्रव्य से भी गृहमंदिर में पूजा करने का निषेध किया है। गृह मंदिर में उत्पन्न देवद्रव्य द्वारा संघ के जिनमंदिर में पूजा करने में भी दोष कहा गया है। और स्वद्रव्य से ही जिनपूजा करनी चाहिए, ऐसा विधान किया गया है। तीर्थयात्रा को जाते समय किसी ने धर्मकृत्य में उपयोग करने के लिए कोई द्रव्य दिया हो तो उस द्रव्य को अपने द्रव्य के साथ मिलाकर, पूजा आदि करने का भी शास्त्रों ने निषेध किया है और कहा है कि 'सर्वप्रथम देवपूजा और धर्मकृत्य स्वद्रव्य से ही करना चाहिए और बाद में ही अन्य ने जो द्रव्य दिया हो उसे सब की साक्षी में, अर्थात् 'यह अमुक के द्रव्य से पूजा करता हूँ'- ऐसा कहकर धर्मकृत्य करने चाहिए।

सामुदायिक, सामूहिक धर्मकार्य करने हों, उसमें जिसका जितना हिस्सा हो, यदि वह सबके समक्ष घोषित न करें, तो पुण्य का नाश होता है और चोरी आदि का दोष लगता है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। यदि शास्त्रों में कथित इन सभी बातों पर विचार किया जाय तो सबको ये सभी बातें समझायी जा सकती हैं, जिससे जिनभक्त ऐसे सर्वश्रावकों को मेहसूस होगा कि, हमें अपनी शक्ति के अनुसार गाँठ के द्रव्य से ही जिनपूजा करनी चाहिए।

परिशिष्ट-११

वर्तमान की समस्या का शास्त्र सम्मत समाधान

सवाल - अधिकांश संघों में देवद्रव्य लाखों रूपियों में संचित होकर बैंकों में पड़ा है । आजकल देवद्रव्य की कोई जरूरत नहीं लगती । तो क्यों न इसे साधर्मिक भक्ति या स्कूल-कॉलेज, शादी की बाड़ी, व हॉस्पीटलों में लगाएँ ? कृपया समाधान दें ।

जवाब - श्री जिनेश्वर देव की भक्ति के लिए एवं श्री जिनेश्वर देव की भक्ति के निमित्त से जिनभक्तों द्वारा समर्पित राशि देवद्रव्य कहलाती है। इस द्रव्य की मालिकी श्रावकों की या संघ की नहीं, परन्तु श्री जिनेश्वर देव की स्वयं-खुद की है ! संघ केवल इसका संचालक-ट्रस्टी है । उसे जिनेश्वर देव के बताए शास्त्रों अनुसार इस द्रव्य का संचालन करने मात्र का ही अधिकार है । इस में वह अपनी मर्जी से काम नहीं ले सकता । शास्त्र-आधारित गीतार्थ गुरु की आज्ञा से ही कार्य करना उसके लिए बंधनरूप है ।

जैन शास्त्रों के आधार से 'देवद्रव्य' की राशि केवल श्री जिनेश्वर देव के मंदिरों के जीर्णोद्धार व नवनिर्माण आदि कार्य में ही इस्तेमाल हो सकती है । अतः देवद्रव्य का इन्हीं कार्यों में उपयोग होना चाहिए । पूरे भारत में आज भी सैंकड़ों जिनमंदिर जीर्णोद्धार मांग रहे हैं । कई स्थानों पर श्रावकों को जिनमंदिर उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ नए भी बनवाने जरूरी हैं । इस कार्य में अरबों रुपयों का व्यय अपेक्षित है । तो देवद्रव्य का बैलेन्स ही कहां से होगा ? सकल श्रीसंघ उदारता दिखाकर बैंकों के कब्ज़े से देवद्रव्य को मुक्तकर जीर्णोद्धार व नवनिर्माण में देवद्रव्य लगा दे तो वर्तमान काल की राजकीय विषमता से भी अपना परमपवित्र देवद्रव्य बच सकेगा । बाकी सरकारी अमलदार कब कलम की नोंक पर इसका कब्जा कर लेंगे यह अब नहीं कहा जा सकता ।

श्रावक का यह कर्तव्य है कि देवद्रव्य में नित नई वृद्धि करें । देवद्रव्य का एक पैसा भी अपने निजी धंधा-व्यापार या भोग-उपयोग में न आ जाए - इसका भी श्रावकों को ख्याल रखना चाहिए । क्योंकि शास्त्र कहते हैं कि -

देवद्रव्य का भक्षण करनेवाला,

देवद्रव्य के भक्षण की उपेक्षा करनेवाला,

देवद्रव्य की निंदा करनेवाला,

देवद्रव्य की आवक (वृद्धि) को तोड़नेवाला

देवद्रव्य की बोली आदि राशि नहीं चुकानेवाला

देवद्रव्य की उगाही में शिथिलता बरतनेवाला

श्रावक हो या साधु पाप कर्म से लिप्त बनते हैं । ऐसे लोग अज्ञानी हैं, उन्होंने धर्म जाना ही नहीं है । अंततोगत्वा इस पाप से वे अनंत संसारी बननेवाले हैं । या तो इन लोगों ने नरक का आयुष्य उपार्जित कर लिया लगता है ।

अब आप विचार कीजिए कि इतना पवित्र देवद्रव्य है, इसका प्रयोग साधर्मिक भक्ति में करना याने श्रावकों को भवोभव के लिए नरक व संसार भ्रमण में डालना और पूर्व कर्मों से वर्तमान में दुःख भुगतनेवालों को देवद्रव्य देकर, पापी बनाकर भावी में भी महादुःखी बनाना क्या उचित है ?

परम पवित्र देवद्रव्य सर्वश्रेष्ठ धर्मद्रव्य है । यह किसी भी संयोग में स्कूल-कॉलेज या अस्पतालों के निर्माणादि कार्य में नहीं लगा सकते । स्कूलें - कॉलेजें खोलना-चलाना, अस्पतालों का निर्माण करना-चलाना, शादी-ब्याह के भवन विविधलक्षी हॉल आदि का निर्माणादि : ये सब सामाजिक कार्य हैं । ये सामाजिक कार्य देवद्रव्य से संपन्न नहीं हो सकते । देवद्रव्य से इन कार्यों को करना याने समूचे समाज को पाप से लिप्त कर भवभ्रमण के चक्र में धकेल देना ।

अपने श्रीशत्रुंजय, श्रीगिरनार, श्रीसमेतशिखरजी आदि एक-एक तीर्थ भी ऐसे विशाल व प्रभावक हैं कि उनके जीर्णोद्धार का काम शुरु किया जाए तो शायद कई बरसों तक चले और उसमें अरबों रुपये लग जाए । देवद्रव्य अधिक है ही कहाँ कि उस पर नजर बिगाड़ी जाए ? एक महापुरुष ने भारपूर्वक कहा था कि - "पुण्यशालियों ! देवद्रव्य अपनी सगी माँ जैसा परमपवित्र है । इस पर कभी बुरी नजर मत डालो । अपने निजी कार्य में या समाज के कार्य में कभी भी, भूलचूक से भी देवद्रव्य का एक पैसा भी इस्तेमाल मत करना । यह एक ऐसा महापाप है कि जो आपको और आपकी औलादों को जनमोंजनम तक दुःखी-महादुःखी करता रहेगा ।"

हो सके तो देवद्रव्य में वृद्धि करना, न हो सके तो उसका रक्षण करना, पर उसका नाश या उपभोग तो कभी मत करना ।

सवाल - साधारण खाता सातों क्षेत्र के कार्य में उपयोगी बनता है । इस खाते में राशि कम आती है तो उसे बढ़ाने के कुछ शास्त्र सापेक्ष उपाय बताने की कृपा करें ।

जवाब - साधारण खाते की राशि १-जिनप्रतिमा, २-जिनमंदिर, ३-जिनआगम-शास्त्र, ४-जिन के साधु, ५-जिन की साध्वी, ६-जिन के श्रावक व ७-जिन की श्राविका इन जैनधर्म में प्रसिद्ध सात क्षेत्रों में जहाँ कहीं भी आवश्यकता हो उस प्रमाण में खर्च कर सकते हैं ।

इन सातों क्षेत्रों में से ऊपरी पांचों क्षेत्रों की राशि ६-श्रावक व ७-श्राविका क्षेत्र में कभी भी नहीं जा सकती । जरूरत पड़ने पर नीचे के क्षेत्र की राशि ऊपर के क्षेत्र में इस्तेमाल कर सकते हैं ।

६-श्रावक व ७-श्राविका ये दोनों क्षेत्र सातों क्षेत्र में धन-राशि की आवक के प्रधान (मुख्य) स्रोत हैं । ये दो क्षेत्र गंगोत्री जैसे हैं, जिनसे गंगा का उद्‌गम होता है । इन दो क्षेत्रों के निमित्त से जो भी बोली-उछामनी या चढ़ावा होता है वह सात क्षेत्र साधारण में जमा होता है । इस में से सातों क्षेत्र में जरूरत अनुसार व्यय कर सकते हैं । पर कोई श्रावक-श्राविका स्वयं इसमें से ग्रहण नहीं कर सकते । संघ देवे तो ले सकते हैं । प्रभावना या संघभोजों जैसे कार्यों में यह राशि खर्च न करें । क्योंकि साधारण खाता बड़ी मुश्किल से खड़ा होता है ।

साधारण खाते की आवक निम्न अनुसार हो सकती है ।

- संघ की ऑफिस का उद्‌घाटन करने का लाभ
- नगर शेठ बनने का लाभ (चढ़ावा)
- संघ के मुनिम (मेहताजी) बनने का लाभ
- स्वामिवात्सल्य करवाने का लाभ
  (स्वामिवात्सल्य होने के बाद बची रकम)
- नवकारसी करवाने का लाभ
  (नवकारसी होने के बाद बची रकम)
- श्रीसंघ के महोत्सव की आमंत्रण पत्रिका में
  जय जिनेन्द्र/प्रणाम/लिखितं लिखने का लाभ
- महोत्सव के आधारस्तंभ, सहयोगी आदि रूप में पत्रिका में नाम लिखने का लाभ
- संघ के उपाश्रय के उद्‌घाटन की बोली
- बोलीयों के प्रसंग पर संघ को बिराजमान करने की, जाजम बिछाने की बोली का द्रव्य

- उपाश्रय संबधी अन्य बोलियाँ व चन्दा
- सात क्षेत्र साधारण खाते के भंडार से निकली राशि
- तपस्वी के बहुमान के विभिन्न चढ़ावों की राशि
- दीक्षार्थी के बहुमान समारोह के विभिन्न चढ़ावों की राशि
- दीक्षार्थी का अंतिम बिदाई (विजय) तिलक करने की बोली
- श्रीसंघ की ऑफिस पर नूतन वर्ष के दिन प्रथम रसीद काटने का लाभ
- ऑफिस के स्थान पर या उपाश्रय में कुंकुम के हस्तचिह्न-थापा लगाने का लाभ
- साधारण खाते के स्थान पर बने व प्रभुजी की जिनपर दृष्टि न गिरती हो ऐसे स्थान पर स्थापित शासन मान्य देव-देवी की मूर्ति भरवाना, प्रतिष्ठा प्रवेश करवाना, उनकी पूजा, चूंदरी खेस चढ़ाना, उनके समक्ष के भंडारों की आय आदि भी सातक्षेत्र साधारण खाते की आय गिनी गई है ।
- किसी प्रभावक सुश्रावक, श्राविका की प्रतिमा या प्रतिकृति का उद्घाटन (अनावरण) आदि करने का लाभ
- संघ के प्रतिघर, प्रति रसोई घर, प्रति चूल्हा निश्चित किया शुल्क (लागा-लगान) या चंदा
- संघ के सदस्य बनने हेतु निश्चित किया गया नकरा-शुल्क फी
- साधारण खाते की प्रॉपर्टी - फर्निचर आदि बेचने से आई हुई राशि
- श्रावकों द्वारा साधारण खाते में प्राप्त नगद नारायण व घर-दुकान-बाजार-खेत आदि की आवक
- साधारण खाते के स्थानों का प्राप्त किराया
- साधारण खाते की F.D. से आय ब्याज
- साधारण खाते की राशि से हुए व्यापार का मुनाफा
- इस तरह और भी कई मार्गों से साधारण खाता पुष्ट किया जा सकता है ।

लेकिन इतना जरूर याद रखें कि -

देवद्रव्य, स्वप्न के चढ़ावों आदि किसी भी अन्य पूज्य पवित्र ऊपरी खातों के लाभों के साथ साधारण का सरचार्ज लगाकर साधारण खाता न बनाएँ । देवद्रव्यादि पर टैक्स, सरचार्ज आदि लगाकर साधारण की राशि इकठ्ठा करना महापाप है । वह साधारण नहीं अपितु एक प्रकार का देवद्रव्य आदि ही बन जाता है । अतः ऐसी भूल कभी न करें।

स्वप्न द्रव्य भी देवद्रव्य ही है । उसे १००% या ६०% ५०% ४०% आदि किसी भी प्रतिशत से साधारण में न ले जाएँ । वह १००% देवद्रव्य ही है । देवद्रव्य में ही ले जाना चाहिए ।

सवाल - ३ चढ़ावा आदि से एकत्र हुआ धर्मद्रव्य भविष्य मे काम आएगा, यह सोचकर अपने संघ में रखना चाहिए अथवा अन्य संघ में जरूरत के अनुसार देना चाहिए ? धर्मद्रव्य लोन के तौर पर अन्य संघ में दिया जा सकता है या नहीं ? देवद्रव्य देकर उसके एवज में साधारण द्रव्य लिया जा सकता है या नहीं ?

जवाब - ३ संघ में जिन मंदिर का नवनिर्माण अथवा प्राचीन जिन मंदिर का जीर्णोद्धार, ज्ञानभंडार निर्माण आदि कोई भी कार्य श्रावक संघ को स्वद्रव्य से ही करना चाहिए। जब संघ स्वद्रव्य से करने में सक्षम न हो तो ही, देवद्रव्य - ज्ञानद्रव्य आदि की उपज से विभिन्न क्षेत्र के लिए संभव स्थानीय संघ के कार्य करने चाहिए। अपने संघ के कार्य भक्तिपूर्ण उदार श्रावकों को स्वयं चढ़ावा आदि की उपज अन्य संघों में देनी चाहिए। इससे दो लाभ प्राप्त होते हैं। (१) शक्तिमान श्रावकों को स्वद्रव्य से जिनभक्ति-गुरुभक्ति व ज्ञानभक्ति आदि का लाभ मिलता है और (२) परगामादि के असमर्थ संघों में द्रव्य के अभाव से अधूरे जिन मंदिरादि के कार्य पूर्ण करने का लाभ मिलता है।

स्थानीय संघ की द्रव्य खर्च करने की क्षमता न हो और कार्य अनिवार्य हो तो संघ में हुई अलग-अलग विभागों की उपज की रकम स्थानीय संघ के ही, संबंधित विभाग में शास्त्रनीति से उपयोग करना निषिद्ध नहीं है। निकट भविष्य में कार्य करने का आयोजन हो तो भी वह द्रव्य स्थानीय संघ में रखने का भी निषेध नहीं है। परन्तु यदि ऐसा कार्य न हो तो निश्चित रूप से अन्य संघों के संबंधित अधूरे कार्य पूरे करने के लिए वह द्रव्य देना ही चाहिए। क्योंकि फलतः तो प्रत्येक संघ, जैनशासन नामक मुख्य संस्था की उप संस्थाएं ही हैं। प्रत्येक संघ में हुई उपज भी जैन शासन की ही उपज है। उपशाखा में हुई उपज जैसे मुख्य शाखा, अपनी अन्य जरूरतमंद उपशाखा में देकर उस शाखा को मजबूत करती है। वैसा ही इसमें भी समझें।

दूसरी बात यह है कि धर्मद्रव्य की राशि 'लोन' के तौर पर दी जा सकती है या नहीं ? इस बारे में यदि अपना श्रीसंघ सक्षम हो तो ऐसा करने की जरूरत नहीं है। अभी एक संघ स्वच्छ भावना से उदारतापूर्वक रकम अन्यत्र देगा तो भविष्य में अन्य संघ भी जरूर ऐसी ही उदारता दिखाएंगे। किन्तु जब स्थानीय संघ में भविष्य में करने योग्य कार्य आंखों के सामने हों तो अल्पकाल के लिए अन्य संघ को लोन के तौर पर रकम देनी चाहिए। उस संघ में कार्य पूर्ण होने पर अनुकूलतानुसार वापस ली जा सकती है। जैन शासन रूपी मुख्य संस्था की उप शाखाएं इस प्रकार एक दूसरे की मदद करें यह उत्तम मार्ग है। अज्ञानतावश अथवा ममत्व के वश होकर उपज की रकम एकत्र ही करें और जरूरत के अनुसार उपयोग न करें अथवा न दें, यह दोष का कारण है।

तीसरी बात देवद्रव्य की रकम देकर एवज में साधारण द्रव्य की रकम मांगना उचित नहीं लगता है। इस प्रकार अदला-बदली से प्राप्त किए गए साधारण द्रव्य का उपयोग करने से देवद्रव्य के भक्षण का आंशिक दोष लगता है। इसी प्रकार साधारण द्रव्य के बदले देवद्रव्य की मांग करना भी योग्य नहीं लगता है। कुछ संघ में सात क्षेत्र की कोई शास्त्रीय व्यवस्था नहीं होती है। प्रत्येक क्षेत्र की आय एक ही थैली में एकत्र करके संचालन किया जाता है। ऐसी संस्था से साधारण के नाम पर द्रव्य लेने से अन्य देवद्रव्य - गुरुद्रव्य - ज्ञान द्रव्य आदि के उपभोग-भक्षण का दोष लगता है। जबकि ऐसी संस्था में देवद्रव्य देने से उसके नाश का दोष लगता है। इस प्रकार कई अनिष्ट होने की संभावना के चलते बदले की उम्मीद से कुछ भी नहीं करना चाहिए।

सवाल - ४ धर्मद्रव्य के संचालन के लिए ट्रस्ट बनाना जरूरी है या नहीं ? यह बताइए।

जवाब - ४ सात क्षेत्र की व्यवस्था तथा धर्मद्रव्य की सुरक्षा करना चतुर्विध श्रीसंघ का कर्तव्य होता है। सात क्षेत्र की संपूर्ण व्यवस्था प्राचीनकाल से श्री जैन संघ करता आया है। श्री श्राद्धविधि, धर्मसंग्रह तथा द्रव्यसप्ततिका जैसे महान ग्रंथों में दर्शाए गुण जिसके जीवन में हों वे सुयोग्य आत्माएं संघ के कर्ताधर्ता बनने और द्रव्य संचालन करने के अधिकारी होते हैं। ऐसे अधिकारी कर्ताधर्ताओं को गीतार्थ गुरु भगवंतों के चरणों में बैठकर द्रव्य संचालन के शास्त्रीय मार्गों को जानना चाहिए। उसी के अनुसार सात क्षेत्र का संचालन व श्री संघ की जिम्मेदारियों का निर्वाह करना चाहिए। संघ के संचालक तथा द्रव्य संचालक गीतार्थ गुरु भगवंत की आज्ञा का पालन करने के लिए समर्पित होने चाहिए। उसी प्रकार गीतार्थ गुरु भगवंत जिनवचन को दर्शानेवाले धर्मशास्त्रों को समर्पित होने चाहिए।

श्रीसंघ व द्रव्य संचालन की यह व्यवस्था आज तक अखंड रूप से चलती आई है। जब तक यह व्यवस्था सुचारू रूप से चलेगी तब तक श्री जैन शासन सुरक्षित तरीके से चलेगा। जहां यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है वहां इसके परिणाम अत्यंत भयंकर आए हैं और अव्यवस्था देखने को मिल रही है।

आज भी जैन धर्मक्षेत्रों की यह मूलभूत व्यवस्था प्रवर्तमान होने से जैन धर्म की कोई भी धार्मिक प्रवृत्ति अथवा धर्मादा (चेरीटेबल ट्रस्ट) प्रवृत्ति करने-कराने के लिए किसी भी सरकारी कानून के अंतर्गत रजिस्ट्रेशन आदि कराने की आवश्यकता नहीं है। इसके बावजूद देश के कुछ राज्यों में (उदाहरणतया महाराष्ट्र, गुजरात) सरकार ने 'पब्लिक ट्रस्ट एक्ट' लागू करके ऐसे कार्य करनेवाले समूहों - संघों के लिए रजिस्ट्रेशन अनिवार्य किया है। जब यह कानून बना तब जैनाचार्यों व जैन नेताओं ने इसका कई मुद्दों पर विरोध भी किया था परन्तु उसकी अवगणना करके यह कानून किया गया था और जैन समूहों-संघों के लिए रजिस्ट्रेशन की अनिवार्यता लागू की गई है इसलिए धार्मिक संस्थाओं के लिए रजिस्ट्रेशन अनिवार्य हो गया है।

परन्तु जैन संस्थाएं जैन धर्म की उपरोक्त मूलभूत व्यवस्था-संचालन - प्रसंचालन पद्धति को ही मानता है, उस पर श्रद्धा रखता है और जब भी ट्रस्ट के अस्तित्व व व्यवस्था संबंधी प्रश्न खड़े हों तब इस मूलभूत व्यवस्था-प्रसंचालन-संचालन पद्धति का ही पूर्ण निष्ठा से अनुसरण करने के लिए कटिबद्ध रहेंगे। यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए।

आज वैकल्पिक व्यवस्था के अभाव में धार्मिक व धर्मादा संस्था के कानून व नियमों को ध्यान में रखते हुए संघ की चल-अचल सम्पत्ति की सुरक्षा, खर्च आदि के लिए ट्रस्ट व्यवस्था तैयार करना जरूरी है। संघ के सदस्यों का विश्वास हासिल करने की दृष्टि से भी यह व्यवस्था जरूरी लगती है।

ट्रस्ट की स्थापना रजिस्ट्रेशन करने से कानूनी ढंग से जो सुविधाएं मिलती हैं वे निम्नानुसार हैं।

१. संघ की चल-अचल सम्पत्ति को कानूनी दर्जा प्राप्त होता है। इन सम्पत्तियों के संदर्भ में संस्था के मालिकाना अधिकार सुरक्षित होते हैं।

२. जैन धर्म व संघ के अधिकारों के लिए अदालती कार्यों में वैध दर्जा प्राप्त होता है।

३. जैन धर्म के तीर्थों व स्थानीय संघों की संपत्ति के संदर्भ में कोई व्यक्ति अवैध तरीके से हक जताए अथवा दावा करे तो उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

४. ट्रस्ट स्थापना करने से संघ के सात क्षेत्रों के द्रव्य संचालन में पारदर्शिता आती है। धर्म द्रव्य की आय तथा खर्च के सभी श्रोत, दाताओं के लिए पारदर्शिता रहती है। परिणामस्वरूप दाता का संस्था पर विश्वास मजबूत बनता है।, भविष्य में दान का भाव और प्रवाह बढ़ता है।

५. वैध ट्रस्ट होने से धर्मादा करने वाले व्यक्ति को कर में राहत व मुक्ति भी मिलती है।

६. ट्रस्ट की स्थापना करने से ट्रस्ट के नाम से बैंक में खाते को वैध दर्जा मिलता है। ट्रस्ट के नाम से शास्त्रीय मर्यादानुसार सातों क्षेत्र के अलग-अलग खाते खुलवाकर यदि संचालन किया जाए तो संबंधित खाते का द्रव्य अन्य विभाग में खर्च होने की संभावना नहीं रहती है।

७. धर्मद्रव्य की आय का शास्त्रीय पद्धति से सात क्षेत्रादि में विभागीकरण करके विविध क्षेत्र की रकम का ब्याज हासिल करके विविध क्षेत्र के द्रव्य की वृद्धि करनी चाहिए।

८. धर्मद्रव्य की आय, ट्रस्ट के नाम से रसीद देकर रकम कानूनी ढंग से जमा की जा सकती है। बैंक आदि में एफ.डी. (फिक्स डिपोजिट) आदि की रसीद भी प्राप्त की जा सकती है।

९. विभिन्न क्षेत्र के विभाग की रकम का ब्याज भी विविध खाते में जमा करना सरल हो जाता है। कुछ ही निश्चित खाते हों तो भी विविध क्षेत्र की रकम का औसत के अनुसार ब्याज भी आवंटित किया जा सकता है।

१०. रजिस्टर्ड ट्रस्ट होने से बैंक में लॉकर-सेफ की भी सुविधा मिलती है। जहां परमात्मा के रजिस्टर्ड गहने, महत्वपूर्ण दस्तावेजों की सुरक्षा हो सकती है।

११. धर्मद्रव्य का शास्त्रीय खर्च भी रसीद लेकर किए जाने से तथा रसीद के आधार पर ही दस्तावेज में उस खर्च का उल्लेख किए जाने से संचालन की स्पष्ट पारदर्शिता बनी रहती है।

१२. संस्था के मुनीम अथवा स्टाफ को भी वैध मस्टर रोल पर लिया जा सकता है। उनके वेतन आदि के खर्च दस्तावेज में बताए जा सकते हैं।

१३. एक ही उद्देश्य से स्थापित अन्य ट्रस्ट को भेंट अथवा लोन देना अथवा लेना हो तो लिया-दिया जा सकता है।

१४. ट्रस्ट न किया जाए तो आज की वैधानिक परिस्थिति के अनुसार दानवीर द्वारा दी गई रकम संघ में जमा न होकर उसका दुर्व्यय होने की संभावना रहती है। दानवीर की ओर से किया गया नकद भुगतान भी यदि ट्रस्ट का वैध लेटरपेड न हो तो अयोग्य मार्ग पर जाने की संभावना रहती है, जबकि ट्रस्ट वैध हो तो ऐसा होने की संभावना नहीं रहती है।

१५. संस्था की किसी भी सम्पत्ति का क्रय-विक्रय ट्रस्ट के नाम से ही हो सकता है। इससे भविष्य में हक-दावे का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। सम्पत्ति के क्रय-विक्रय में हुए लाभ-हानि का भी हिसाबी दस्तावेज में उल्लेख किया जा सकता है।

१६. दानवीर को रजिस्टर्ड ट्रस्ट की रसीद मिलने से दान में विश्वास उत्पन्न होता है।

इसलिए मौजूदा वैधानिक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए ट्रस्ट का पंजीकरण कराना अनिवार्य बनाया गया है।

परिशिष्ट -१२

रोकने जैसी एक आशातना

प्रतिमा आत्मारूप, प्रासाद देहरूप, आमलसार ग्रीवा-गर्दनरूप,
कलश मस्तकरूप व ध्वजा केशरूप
सोमपुरा अमृतलाल मूलशंकर त्रिवेदी, पालीताणा

पिछले कुछ समय से मंदिर निर्माण के विषय में आशातना का एक नया ही प्रकार सम्मिलित हुआ है और दिन-प्रतिदिन यह रुढ़-दृढ़ होता जा रहा है। यह आशातना मंदिर के शिखर पर ध्वजा चढ़ाने की अनुकूलता के लिए साधन उपयोग करने के रूप में फैलती जा रही है। इस सुविधा का उपयोग वर्ष में एक ही बार हो सकता है। यह तो ठीक किन्तु शास्त्रीयता का घात करने पूर्वक और बारहों महीने तक मंदिर-शिखर की शोभा को अशोभनीय बनाकर इस सुविधा को अपनाने का जो चलन बढ़ रहा है, यह अत्यंत खेदजनक है। हम प्रतिमाजी को तो पूज्य-पवित्र मानते हैं, किन्तु संपूर्ण मंदिर भी पवित्र व पूज्य है। इसलिए ही मंदिर - शिखर - कलश के अभिषेक करने का विधान है। मंदिर की पवित्रता का ज्ञान नहीं, इसीलिए शिखर पर लोहे व अन्य धातु की जाली, खपेड़ा आदि लगाकर मंदिर की शोभा बिगाड़ने का काम आजकल तेजी से बढ़ता जा रहा है। गतानुगतिक ढंग से अपनाई जाती इस आशातना को लेकर लालबत्ती दिखानेवाला यह लेख सभी को और विशेषकर ट्रस्टियों के लिए पढ़ने योग्य और विचारणीय है। - संपादक

धर्मशास्त्र व शिल्पशास्त्र ने जिसे देवस्वरूप माना है, ऐसे जैन मंदिरों के शिखरों पर वर्तमान में धातु की सीढ़ियां व शिखर के ऊपरी भाग में प्रदक्षिणा की जा सके, ऐसे धातु पिंजरे बनाने का नया प्रचलन शुरू हुआ है।

कोई भी कलाप्रिय अथवा धर्मप्रिय मनुष्य मंदिरों के ऊपरी भाग में ऐसा पिंजरा बना हुआ देखे, तो उसे आघात व ग्लानि हुए बिना नहीं रहती है। ऐसे पिंजरे बनाना यदि जरूरी होता, तो शिल्पशास्त्र की रचना करनेवालों ने इसकी विधि अवश्य बताई होती, परन्तु शिल्पशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र के किसी भी ग्रंथ में इसका उल्लेख तक नहीं है।

शिल्पशास्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि, शास्त्र के मार्ग का त्याग करके अपनी बुद्धि से कोई भी नया प्रचलन शुरू किया जाता है, तो समस्त फल का नाश होता है। हजारों वर्ष से इस देश में मंदिर बनते हैं और उन सबकी ध्वजाएं प्रतिवर्ष सालगिरह पर बदली जाती हैं। पिछले दशक से पहले ध्वजाएं बदलने के लिए सीढ़ियां और पिंजरे नहीं थे, तब भी ध्वजाएं बदली जाती थी। अभी भी शत्रुंजय, तारंगा, गिरनार, राणकपुर आदि जगहों पर सीढ़ी व पिंजरों के बिना ही ध्वजाएं बदली जाती हैं।

ध्वजा बदलने के लिए श्रावकों को मंदिर पर चढ़ना ही चाहिए, ऐसा कोई धार्मिक नियम जानकारी में नहीं है। जिस दिशा से ध्वजा चढ़ानी हो, उसी दिशा से व्यक्ति शिखर पर चढ़ सकते हैं, वे ध्वजा लेकर ऊपर जाएं और ध्वजा बदलने का काम करें। यह पद्धति हजारों वर्ष से चली आ रही है और यही पद्धति ज्यादा योग्य है।

श्रावकों में ऐसी मान्यता है कि, नीचे प्रतिमाजी हों तो उनके ऊपरी भाग में चलना अथवा खड़े नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से दोष लगता है। इस मान्यता के अनुसार तो अनिवार्य जरूरत न हो, तब तक श्रावकों को मंदिर के शिखर पर नहीं चढ़ना चाहिए। क्योंकि मंदिर के पिछले भाग में पिंजरे के जिस भाग में श्रावक खड़े रहते हैं, वहीं नीचे प्रतिमाजी होती हैं। इसलिए स्वयं चढ़ने के बजाय अन्य व्यक्ति से ध्वजा चढ़वाना ज्यादा योग्य है। इसके बावजूद अपने हाथ से ही ध्वजा चढ़ाने का आग्रह हो, तो इसके लिए नीचे खड़े रहकर ध्वजा चढ़ाई जा सके, ऐसा दूसरा मार्ग निकाला जा सकता है। यह हम अंत में देखेंगे।

'आचार दिनकर' नामक वर्धमानसूरीजी द्वारा रचित विधि-विधान के जैन ग्रंथ में तथा शिल्पशास्त्र के ग्रंथों में प्रासाद का देव-स्वरूप में वर्णन किया गया है। इसमें प्रतिमाजी आत्मा हैं और प्रासाद देह है, यह अर्थ दिया गया है। आमलसार ग्रीवा (गर्दन) है और कलश मस्तक है तथा ध्वजा केश है, यह भी कहा गया है। प्रतिमा के देहस्वरूप प्रासाद पर अपनी मान्यतानुसार सुविधा के लिए, जैसे मजदूर के सिर पर टोपली चढ़ाते हैं, वैसे पिंजरा और सीढ़ियां लगाना बहुत बड़ा अविनय माना जाता है।

इस पिंजरे व सीढ़ी से मंदिर की शोभा बिगड़ जाती है, और चबूतरा जैसा दिखाई देता है। इससे शिल्पस्थापत्य का सौंदर्य भी खत्म हो जाता है। दुःख की बात तो यह है कि, अपने बनाए मंदिरों पर ऐसे पिंजरे चढ़ाकर उनका सौंदर्य बिगाड़नेवाले श्रावकों का शिल्पकार भी विरोध नहीं करते। आमलसार को प्रासाद की ग्रीवा अथवा गरदन

माना गया है। खपेड़ों से प्रासाद की गरदन दबाई जाती है और ऐसा करना कई बार अनर्थकारी सिद्ध होता है।

कहने का तात्पर्य यही है कि, वर्तमान समय के इस अल्पकाल में देवस्वरूप प्रासादों पर धातुओं के पिंजरे और पत्थर लगाकर आपमति से मनमाने ढंग से जो अशास्त्रीय व आशातनाकारक रिवाज शुरू किए गए हों उनके दृष्टांत लेकर गतानुगतिक ढंग से अब मंदिरों पर उनका अमल न किया जाए तो अच्छा। इसके अलावा जहां ऐसा निर्माण हुआ हो, वहां से सीढ़ी-खपेड़ा आदि हटा लेना अत्यंत जरूरी है।

प्रासाद देवस्वरूप व प्रतिमाजी के देहस्वरूप होने से प्रतिमाजी की तरह ही उसे भी पवित्र जल से अभिषेक किया जाता है, यह प्रतिष्ठाविधि के जानकारों को समझाने की जरूरत नहीं है। इन जानकारों को इस दुष्टप्रथा की जड़ें और गहरी उतरें, उससे पहले ही उखाड़ फैंकने का पुरुषार्थ करना जरूरी है।

प्रासाद के ऊपर न चढ़ना पड़े और श्रावक अपने हाथ से ध्वजा चढ़ा सकें, ऐसा कैसे संभव हो, यह अब देखते हैं। 'अपराजित पृच्छा' नामक शिल्प ग्रंथ में ध्वजा दंडिका की पाटली के साथ **'चालिके द्वे'** दो धिर्रियां लगाने की आज्ञा दी गई है, जिसके अनुसार वर्तमान में भी बड़ी ध्वज दंडिकाओं की पाटली के साथ घिर्रियां लगाई जाती हैं। इनमें सांकण पिरोकर उसके माध्यम से जिस दंडिका में ध्वजा पिरोई गई है, उसे ऊपर चढ़ाकर ध्वज दंडिका की पाटली के साथ संलग्न कर दिया जाता है। यह सांकण इतनी लंबी रखनी चाहिए कि उसके द्वारा ध्वजा पिरोने की पीतल की दंडिका जगती अर्थात चबूतरे के तल तक नीचे उतारी जा सके और उसमें ध्वजा को ध्वजदंडिका पाटली के साथ संलग्न किया जा सके, इसके बाद जो व्यक्ति शिखर पर गया हो, वह सांकण को ध्वज दंड के साथ मजबूत बांधकर नीचे उतर जाए, तो श्रावकों को शिखर पर न चढ़ना पड़े और वे ध्वजा अपने हाथ से चढ़ा सकें। निर्धारित मार्ग पर ही प्रदक्षिणा भी कर सकें।

सांकण की लंबाई कम रखनी हो, तो सांकण के दोनों सिरे सूत की मजबूत डोरी से बांधे जा सकते हैं। ध्वजा ऊपर जाने के बाद अतिरिक्त डोरी खोल ली जाए और सांकण को ध्वज दंडिका के साथ बांध दिया जाए, ऐसा भी किया जा सकता है। परन्तु पिंजरे तथा सीढ़ियां लगाना धर्मशास्त्र व शिल्पशास्त्र की दृष्टि से बिल्कुल उचित नहीं हैं। क्योंकि शास्त्र विरोधी ऐसी मनमानी का प्रचलन समस्त पुण्य फल का नाश करनेवाला होता है।

(कल्याण वर्ष - ४८ (२६०) अंक - ४ जुलाई - ९१ से साभार)

वि.सं. १९९०　　राजनगर : अहमदाबाद

मुनि सम्मेलन का शास्त्रीय निर्णय (पट्टक)

पट्टक में पूज्यों के हस्ताक्षर

वीर संवत् २४६०	विजय नेमिसूरि	विजय सिद्धिसूरि
चैत्र वद ६ गुरुवार	आनन्दसागर	विजय दानसूरि
विक्रम संवत १९९०	विजय नीतिसूरि	
चैत्र वद ६ गुरुवार	जयसिंहसूरिजी	
इस्वीसन १९३४	विजय वल्लभसूरि	
एप्रीला मास ता. ५ गुरुवार	विजय भूपेन्द्रसूरि	
	मुनि सागरचन्द्र	

अखिल भारतवर्षीय जैन श्वेतांबर मुनि-सम्मेलने सर्वानुमते "पट्टकरूपे" आ नियमो कर्या छे. ते, मने सुप्रत करेल तेज आ "असल पट्टक" में आजरोज अमदावादनी शेठ आणंदजी कल्याणजीनी पेढीने सोंप्यो छे.

वंडावीला : अहमदाबाद　　कस्तूरभाई मणिभाई

ता. १०-४-३४　　संघपति